नवम्बर 2025

दादावाणी

Retail Price ₹ 20

जन्म दिवसनी उजवणी,
आत्मानंदनी केळवणी,
पूजनीय वंदनीय '**ज्ञानी**' पासे
छेल्ली 'वस्तु' मळी!

मोरबी में दादा भगवान का 118वाँ जन्मजयंती महोत्सव

ता. 1 से 5 नवम्बर 2025

आत्मज्ञानी पूज्यश्री दीपकभाई का आफ्रिका - दुबई सत्संग कार्यक्रम

मोम्बासा (केन्या) : आफ्रिका शिविर : 8 से 10 सितम्बर 2025

स्वागत

गरबा

सत्संग

भक्ति

दर्शन

इन्फोर्मल सत्संग

नैरोबी (केन्या) : सत्संग - ज्ञानविधि : 12 से 14 सितम्बर 2025

दुबई (UAE) : सत्संग - ज्ञानविधि : 17 से 19 सितम्बर 2025

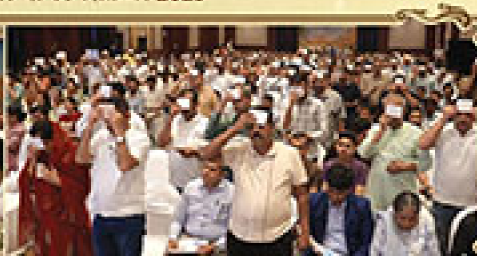

फुजैराह (UAE) : GCC शिविर : 21 से 23 सितम्बर 2025

स्वागत

सांस्कृतिक कार्यक्रम

सत्संग

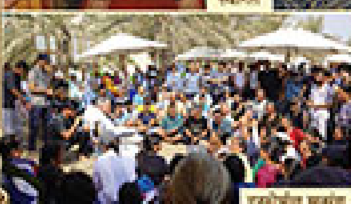
इन्फोर्मल सत्संग

गरबा

दर्शन

वर्ष : 21 अंक : 1
अखंड क्रमांक : 241
नवम्बर 2025
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2025
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Multiprint
Opp. H B Kapadiya New High School, At-Chhatral, Tal: Kalol, Dist. Gandhinagar - 382729

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदाबाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज,**
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए: +91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 1000 रुपये
वार्षिक
भारत : 200 रुपये
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

डिस्चार्ज 'गर्वरस' जिसका गया, वह छूट गया

संपादकीय

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) ने महात्माओं को आत्मज्ञान देकर ज्ञानदशा में दूज का चंद्रमा तो कृपा से दे दिया है और दूज से पूनम तक पहुँचने का पुरुषार्थ भी खुला कर दिया है, किन्तु मार्ग की पूर्णाहुति करके के लिए इतनी अधिक कमियाँ क्यों रहती हैं? पाँच आज्ञा पालन करने का निश्चय है, उसके बावजूद भी जागृति क्यों नहीं रहती? बावा की डिग्रियाँ क्यों नहीं बढ़ती हैं? उसके पीछे एक बड़ा बाधक कारण है, 'कर्तापन का गर्वरस'।

गर्व अर्थात् 'जहाँ खुद नहीं करता' वहाँ पर 'खुद करता है' ऐसा मानना। उसके बाद दूसरों से कह देता है कि 'यह मैंने किया'। उस समय भीतर रस उत्पन्न होता है, वह गर्वरस है! आत्मज्ञान प्राप्त होने के साथ मूल अहंकार तो खत्म हो गया, परंतु डिस्चार्ज अहंकार रहा है। जिसके कारण अजागृति रहने से गर्वरस परिणाम उत्पन्न होते हैं। अहंकार-मान-अभिमान से भी ज़्यादा ज़ोखमी यदि कुछ है तो वह गर्वरस है। वह मिठास जागृति पर आवरण ला देती है, व्यवस्थित की आज्ञा चूका देती है और खुद को अँधेरे में डाल देती है।

'मैंने कितना अच्छा सोचा, मैंने कितना अच्छा कार्य किया, मैंने कितनी अच्छी वाणी बोली।', वास्तव में सब डिस्चार्ज ही हो रहा है परंतु इन सब में अच्छा करने का अहंकार किया, वह मिठास देता है। इसके उपाय में सबसे पहले तो 'यह गलत है', ऐसा समझकर, 'मैं कौन हूँ' उसकी जागृति में रहकर और वास्तव में 'करता कौन है' वह जानते जाएँगे, साथ ही व्यवस्थित की आज्ञा विस्तारपूर्वक समझते जाएँगे, वैसे-वैसे गर्वरस के सामने जागृति बढ़ेगी और गर्वरस विलय होगा। साथ ही साथ पहले के अभ्यास से वृत्तियाँ वहाँ चली जाएँ तो तुरंत उखाड़ कर प्रतिक्रमण रूपी हथियार का उपयोग करना भी अत्यंत आवश्यक है।

दादाश्री का तो अहंकार ही संपूर्ण खत्म हो गया था। उससे मन-वचन-काया की किसी भी क्रिया में थोड़ा भी मालिकी भाव नहीं था, तब फिर गर्वरस तो कहाँ से होगा? वे कहते हैं, आत्मा की बाबत के अलावा मुझे तो कुछ भी नहीं आता। वाणी अच्छी निकलती तो कहते कि यह तो टेपरिकॉर्ड है। किसी को हाथ से स्पर्श करते तब भी कल्याण हो जाता था, वहाँ कहते हैं कि यह तो हमारा यशनाम कर्म है। इस तरह अहंकार रहित दशा की जीवंत छवि दादाश्री में स्पष्ट दिखाई देती थी।

अनंत जन्मों से गर्वरस चखने का कारण यह था कि कभी आत्मरस चखा नहीं था। अब आत्मरस की मिठास चखने के बाद जहाँ आत्मसुख के सर्वोच्च शिखर पर पहुँचकर हमेशा के लिए सुखी हो जाएँ, ऐसी दशा प्राप्त हो जाए ऐसा है, वहाँ ऐसे तुच्छ गर्वरस की मिठास का कीचड़ न चोंथकर इस दोष के सामने ज्ञान के पुरुषार्थ द्वारा जाग्रत रहकर पूर्णाहुति की तरफ आगे बढ़ें और खुद का काम निकाल लें, यही हृदयपूर्वक अभ्यर्थना!

जय सच्चिदानंद

डिस्चार्ज 'गर्वरस' जिसका गया, वह छूट गया

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

संपूर्ण दर्शन, साल में तीन दिन

प्रश्नकर्ता : आप सत्संग करते हैं और गुरुपूर्णिमा के दिन दर्शन देते हैं, तो उन दोनों में अंतर है क्या?

दादाश्री : बहुत अंतर है। इसे तो ऐसा कहा जाएगा कि बाहर आ गए हैं। वह गुरुपूर्णिमा का दर्शन तो बहुत ही, ओहोहो! वह तो पूर्ण दर्शन कहलाता है। कोई एक बार भी दर्शन कर गया तो बहुत हो गया। तब वीतराग दर्शन संपूर्ण होते हैं।

हम अपने पूर्ण स्वरूप में एकाकार रहते हैं! मैं (ज्ञानी पुरुष) अपने स्वरूप में (दादा भगवान के साथ) एकाकार रहता हूँ, तो उस दर्शन का फल मिलता है! इसलिए दर्शन करने का माहात्म्य है न! उस दिन हम 'आओ चंदूभाई या आओ फलाने भाई', उसमें नहीं पड़ते। पूर्ण भाव में रहते हैं जबकि यहाँ पर, अन्य किसी दिन तो हम बुलाते हैं, पहचानते भी हैं, वहाँ पर तो हम पहचानते भी नहीं और बुलाते भी नहीं हैं। उस समय अद्वैतभाव में रहते हैं और अभी द्वैत में रहना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : गुरुपूर्णिमा के दिन, जन्मजयंती के दिन और दिवाली के दिन, आपकी तीन सौ साठ डिग्री पूरी रहती हैं, वह बात सही है?

दादाश्री : हाँ, रहती है। उस दिन तो 'आइए चंदूभाई' ऐसा-वैसा हमें नहीं होता न! कुछ दखल नहीं होता, उस दिन तो संसार में नहीं पड़ते न। उस दिन पूर्ण दर्शन होते हैं। नया साल, जन्मजयंती और गुरुपूर्णिमा के दिन अंतिम दर्शन होते हैं, पूर्णिमा के दर्शन होते हैं। फुल दर्शन होते हैं सभी को बहुत फायदा होता है।

क्लियर विज़न से पूर्ण दर्शन होते हैं

प्रश्नकर्ता : गुरुपूर्णिमा हो या जन्मजयंती हो, उन दिनों दादा के दर्शन करते हैं तो हमारे अतंराय टूट जाते हैं?

दादाश्री : आपका विज़न कुछ खुला हुआ-साफ हो, तब पूर्ण दर्शन होते हैं। पूर्ण तीन सौ साठ के दर्शन होते हैं, आपका विज़न साफ हो तो। धुंधला हो तब वैसे दर्शन होते हैं?

प्रश्नकर्ता : हमारा विज़न क्लियर हो तो तीन सौ साठ के दर्शन होते हैं वह कैसे? हमारा विज़न क्लियर यानी?

दादाश्री : आपका शुक्ल अंत:करण हो, अन्य कोई भी बाहर का विचार न आया हो और सब कुछ एक घंटे तक भी अच्छा *गुंठाणा* (४८ मिनिटस्, गुणस्थानक) रहा हो, तो विज़न क्लियर होता है। जैसे किसी भी चीज़ को आईने में देखना हो तो उसे साफ करने के बाद क्लियर हो जाता है न, उसके जैसा है। उस दिन संपूर्ण दर्शन होते हैं, तीन सौ साठ के और बाकी के दिनों में आप आओ, आप इधर जाओ, उधर जाओ ऐसी खटपट में रहते हैं, तब संपूर्ण दर्शन नहीं होते। या फिर जब ज्ञान देते हैं, उस समय संपूर्ण दर्शन में रहते हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, मैं वह अंतिम गाथा जब बोलता हूँ, 'देह छतां जेनी दशा...' तब आपके संपूर्ण दर्शन होते हैं।

दादाश्री : हाँ, वह सब दिखाई देता है, वह स्वभाविक है। यदि आपका विज़न साफ होगा तो दिखाई देगा! विज़न पर आधारित है, आपके आईने पर, दूसरे का आईना वह कुछ काम नहीं आता। सब कुछ है, उसे दिखाई देना चाहिए।

चौदह लोक के नाथ के दर्शन

प्रश्नकर्ता : दादा, आपकी उपस्थिति में हमें विशेष शांति बरतती है।

दादाश्री : वह तो, इस उपस्थिति की तो बात ही अलग है न! यह मेरी उपस्थिति तो आपको दिखाई देती है, लेकिन मुझे जिनकी उपस्थिति दिखाई देती है, वह उपस्थिति आपको भी बरतती है। चौदह लोक के नाथ, पूरे ब्रह्मांड के नाथ अंदर प्रकट हो गए हैं, उनका लाभ मुझे भी मिलता है और आपको भी मिलता है। इतनी निकटता होनी चाहिए, बस! जितना नज़दीक उतना ही लाभ और आसपास का वातावरण तो अच्छा रहता ही है। उसमें भी फिर वातावरण में बदलाव! लेकिन निकटता का लाभ मिलना और वह भी फिर उसे समझकर, समझे बिना लाभ नहीं है।

इसलिए हम कहते हैं न कि, यह भूल जो हमें दिखाते हैं, वे चौदह लोक के नाथ हैं। उन चौदह लोक के नाथ के दर्शन करो। भूल दिखाने वाले कौन हैं? चौदह लोक के नाथ!

और वे 'दादा भगवान' तो मैंने देखे हैं, संपूर्ण दशा में हैं अंदर, उसकी गारन्टी देता हूँ। मैं ही उन्हें भजता हूँ न! और आपको भी कहता हूँ कि, 'भाई, आप दर्शन करके जाओ'। 'दादा भगवान' की 360 डिग्री और मेरी 356 डिग्री हैं। इसलिए हम दोनों अलग हैं, वह प्रमाणित हो गया या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ न!

दादाश्री : हम दोनों अलग हैं। भीतर प्रकट हुए हैं, वे दादा भगवान हैं। वे संपूर्ण प्रकट हो गए हैं, परम ज्योति स्वरूप!

मोक्षमार्ग में बाधक हो उसे छोड़ दो

प्रश्नकर्ता : हम क्या कहना चाहते हैं? चौदह लोक के नाथ इस तरह सामने से आकर मिलें ऐसे नहीं थे। वे तो इन दादा के थ्रु आपको मिले हैं। क्या हुआ है?

प्रश्नकर्ता : दादा के थ्रु मिले हैं।

दादाश्री : हाँ। इसलिए दादा कहते हैं कि भाई, काम निकाल लो। किसलिए, कि ऐसे नाथ नहीं मिलेंगे। जब नाथ प्रकट होते हैं तब वे वीतराग हो चुके होते हैं और यहाँ नाथ प्रकट हुए हैं और ये *खटपटियाँ* वीतराग हैं इसलिए पकड़ में आ गए हैं। अत: मैं कहता हूँ कि काम निकाल लो। पूर्णाहूति करवा देंगे। अनंत जन्मों के नुकसान की भरपाई करवा देंगे तेजी से।

आपको तो अपना काम निकाल लेना है। इसी की पूर्णाहुति के लिए शरीर का उपयोग करना है। यदि ये कर्म खपा दिए होते और उसके बाद यह ज्ञान मिला होता तो एक घंटे में ही उसका काम पूर्ण हो जाता। लेकिन ये कर्म तो खपाए नहीं हैं और राह चलते को ज्ञान दे दिया है। इसलिए अंदर जब कर्म के उदय बदलते हैं, तब बुद्धि का प्रकाश उसे पलट देता है, उस समय उलझ जाता है। अब उलझ जाओ, तब 'दादा' 'दादा' करते रहना और कहना, 'यह लश्कर उलझाने आया है' क्योंकि अभी भी ऐसे उलझाने वाले अंदर बैठे हैं,

इसलिए सावधान रहना। उस समय 'ज्ञानी पुरुष' का ज़बरदस्त आश्रय रखना।

अब तो एक क्षण भी गँवाने जैसा नहीं है। ऐसा अवसर बार-बार नहीं आता इसलिए यदि यहाँ पर जागृति रखोगे तो सभी कर्म भस्मीभूत हो जाएँगे और एक अवतारी होकर मोक्ष में चले जाओगे। मोक्ष तो सरल है, सहज है, सुगम है। समभावी मार्ग है, कुछ भी मेहनत किए बगैर चले ऐसा है इसलिए काम निकाल लो। अनंत जन्मों तक फिर यह योग बैठे ऐसा नहीं है। अत: जो कुछ मोक्षमार्ग में बाधक हो उसे छोड़ दो और आगे बढ़ो फिर से उस ध्येय पर, कह सकते हैं न! कैसी भी कठिन परिस्थिति में भी खुद का ध्येय नहीं चूके ऐसा होना चाहिए।

मिठास लगे वहाँ पड़े मार

प्रश्नकर्ता : एक ध्येय पकड़ में आ जाए कि मोक्ष में जाना है और उसके अलावा कुछ भी नहीं चाहिए और मोक्षमार्ग के बाधक कारण कौन से हैं, इतना ही यदि स्पष्ट हो जाए तो सारी झंझटें खत्म हो जाएँगी और सब कुछ आसान हो जाएगा।

दादाश्री : अरे, ऐसा ही निश्चित हो जाए कि 'मोक्ष के लिए ही चाहिए, और कुछ नहीं चाहिए।' तो बहुत हो गया। ऐसा हो जाए तो काम ही निकल जाएगा न! अभी तो आपके मन में ऐसा भी हो जाता है कि 'फलाँ भाई मेरे लिए अच्छा बोलें तो ठीक है।' आपको कोई नमस्कार करे और दो मीठे शब्द बोले तो तुरंत उस पर आपकी दृष्टि मिठास वाली हो जाएगी।

प्रश्नकर्ता : लोग वाह-वाही करें, लेकिन खुद स्वीकार नहीं करे तो?

दादाश्री : स्वीकार न करे या करे, लोग वाह-वाही करें तो हो गया। कौन ऐसा है जो स्वीकार नहीं करेगा? रामचंद्र जी करते थे, कृष्ण भगवान स्वीकार करते थे, सभी स्वीकार करते थे।

प्रश्नकर्ता : इन सभी ने स्वीकार किया तो, 'दादा ने मेरा यह किया' ऐसा कोई बोले तो क्या आप स्वीकार करते हैं?

दादाश्री : तो क्या, मुझे कड़वा लगता होगा? ये सभी कहते हैं कि 'दादा ने अच्छा किया', तो मीठा ही लगेगा न! मीठा है फिर भी हमें उस पर राग नहीं और कोई कड़वा बोले तो उस पर द्वेष नहीं होता।

इस मिठास से ही सारे रोग रहे हुए हैं। कड़वाहट से वे रोग जाएँगे, मिठास से रोग बढ़ेंगे इसलिए जागृति कम ही हो जाती है न! जो हमें खड्डे में ले जाएगा! सबसे बड़ा जोखिम ही यही है, दूसरा कोई जोखिम है ही नहीं।

जबकि वे मोक्षमार्गी तो सत्य जानने के कामी जैसे होते हैं, मोक्ष के कामी होते हैं, दूसरा कोई दखल ही नहीं। मोक्ष का परिणाम जागृति नहीं है, जागृति का परिणाम मोक्ष है! संपूर्ण जागृति कब रहती है? अहंकार का विलय होता है, तब। अहंकार और अंधा दोनों एक सरीखे कहे जाते हैं। जिसका जिसमें अहंकार ज़्यादा है, उसमें उसका अंधापन ज़्यादा रहता है। जितनी जागृति बढ़ती है उतना अहंकार कम हो जाता है। अजागृति की वजह से अहंकार है और अहंकार है उसी वजह से अजागृति है।

अहंकार जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे *आड़ाई*, मान, गर्व, घमंड शब्दों का उपयोग होता है। यह गर्वरस लेने लगता है न, वह अहंकार ही यह सब करवाता है हमसे, कि 'यह तो बहुत अच्छा है, बहुत अच्छा है, लोगों को अच्छा लगा।' अच्छा करने का अहंकार किया, वह मिठास देता

है। बुरा करने का अहंकार किया, वह कड़वाहट देता है। कड़वाहट और मिठास दोनों अहंकार के फल हैं। जब गर्व रस उत्पन्न होता है, उस घड़ी मिठास लगती है। जब मीठा लगे न, तब समझ लेना कि मार पड़ने वाली है।

प्रश्नकर्ता : वह मिठास किस आधार पर बरतती है, दादा?

दादाश्री : वह पहले की जो बुरी आदत पड़ी हुई है, तो कहेगा, 'इतना पीते थे, उसके बजाय इतना ही, लेकिन थोड़ा सा ले लेते हैं'।

प्रश्नकर्ता : तो इसे मिटाने के लिए क्या करें?

दादाश्री : अपने ज्ञान में एक्ज़ेक्ट हो जाएगा न, तो धीरे-धीरे कम हो ही जाएगा और फिर कभी भी उसका बचाव नहीं करना चाहिए।

'मैंने किया', उसे कहते हैं 'गर्व'

अतः कृपालुदेव ने तो बहुत सारे गुण लिखे हैं। अब जिसमें गर्व नहीं है, उस व्यक्ति को पहचाना जा सकता है या नहीं पहचाना जा सकता? गर्व किसे कहते हैं, वह जानते हो आप? आप तो प्रोफेसर हो, किसे गर्व कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : क्रोध करता है उसे?

दादाश्री : नहीं। क्रोध करता है वह तो कालिया नाग कहलाता है, क्रोधी कहलाता है। गर्व अलग चीज़ है। जगत् ने जानी नहीं ऐसी चीज़ है। गर्व का अर्थ समझ में आ जाए तब भी बहुत हो गया। क्या लगता है आपको?

प्रश्नकर्ता : खुद में ऐश्वर्य का भाव?

दादाश्री : नहीं, ऐसा नहीं है। ऐश्वर्य का भाव, वह तो अभिमान कहलाता है।

गर्व क्या है? खुद नहीं करता है वहाँ पर कहता है, 'मैंने किया'। उसे गर्व कहते हैं। खुद करता नहीं है, 'इट हेपन्स' है। उसके बजाय लोग क्या कहते हैं?

प्रश्नकर्ता : मैंने किया।

दादाश्री : वह गर्व कहलाता है। 'मैंने किया' कहा, यानी आधार दिया और आधार दिया तो वह कर्म (बीज़ पड़ता है।) 'मुझे विचार आया, मैं सोच रहा हूँ', ऐसा कहा कि आधार दिया! 'हम' किसी चीज़ के कर्ता नहीं होते।

यह प्रकृति दिखती है जीवंत, लेकिन वास्तव में वह जीवंत नहीं है। आमने-सामने जो कुछ भी करते हैं, तूफान मचाते हैं, उसमें भी चेतन नहीं है। सिर्फ 'रोंग बिलीफ' ही है कि, 'मैंने किया!' आत्मा की उपस्थिति में यह सब हो रहा है, सिर्फ उपस्थिति ही है। इसमें ज़िम्मेदार कौन है? इसमें भूल क्या है? तब कहते हैं, करता कोई और है और कहता है कि 'मैं कर रहा हूँ' यही भूल है। उसे खत्म कर दो तो हल आ जाएगा।

ज्ञान के बाद अहंकार के परिणाम

इस 'ज्ञान' के बाद आपमें अब अहंकार है ही नहीं। क्योंकि अहंकार किसे कहते हैं? 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा तय करना, उसे कहते हैं अहंकार! और आपको 'मैं चंदूभाई हूँ' इस ज्ञान पर शंका हुई। 'मैं चंदूभाई नहीं हूँ' जबकि 'मैं तो शुद्धात्मा हूँ,' इसलिए अब आपमें अहंकार है ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : अहंकार अर्थात् 'मैं चंदूभाई हूँ' उस भाग को ही कह रहे हैं न?

दादाश्री : हाँ, वही अहंकार कहलाता है।

प्रश्नकर्ता : वह अहंकार भाग तो निकल गया है लेकिन क्या अब हमारा अभिमान रह गया है?

दादाश्री : हाँ, अभिमान में हर्ज नहीं है। अभिमान निकाली चीज़ है। आपमें अहंकार रहा ही नहीं न! अभिमान में हर्ज नहीं है। मान और अभिमान, वे निकाली चीज़ें हैं। फिर उससे आगे गर्व और बाकी सब सामान रहा हुआ है न! मूल अहंकार गया लेकिन अहंकार के जो परिणाम थे, वे तो अभी रहे ही हैं न! मूल रूट कॉज़ गया लेकिन ऊपर की डालियाँ वगैरह अभी बची हैं, वे सूख जाएँगी।

अहम्कार मैंने किया। जहाँ खुद ने नहीं किया, वहाँ 'मैंने किया' ऐसा कहते हैं, वह अहंकार है। अहंकार से सीना तानकर घूमना, वह मान और फिर 'मैंने किया' ऐसा सभी को बताना, उसे गर्वरस कहते हैं।

अक्रम में डिस्चार्ज को आधार नहीं देते

पूरे जगत् को 'मैं कर रहा हूँ', वह भ्रांतिजन्य *भान* है। वास्तव में तो सभी का 'डिस्चार्ज' ही हो रहा है, लेकिन उसका उन्हें *भान* नहीं है। खुद को 'खुद' का ही *भान* नहीं है।

यह तो खुद को ऐसा लगता है कि 'मैं कर रहा हूँ।' परंतु यह 'डिस्चार्ज' के धक्के से हो रहा है, बहुत दबाव आता है तो फिर 'चार्ज' हो जाता है। यानी मुख्यत: अज्ञानता बाधक है। यदि अज्ञानता जाए तो मुक्ति हाथभर की दूरी पर है। अज्ञान में रहने से संसार 'चार्ज' होता है, 'ज्ञान' में रहने से संसार 'डिस्चार्ज' होता है!

प्रश्नकर्ता : ऐसा कहते हैं कि ज्ञान का भी गर्व आ जाता है।

दादाश्री : ज्ञान का गर्व तो हम चला भी लेते हैं कि अच्छी बात का गर्व है लेकिन यह तो, अज्ञानता का भी गर्व है।

प्रश्नकर्ता : और गर्व का उपयोग अच्छे अर्थ में भी होता है न, कि यह गर्व करने जैसी बात है।

दादाश्री : उसका फिर अच्छे अर्थ में उपयोग होता है। लेकिन जगत् में मूल गर्व यहाँ पर है। इस जगत् में 'खुद' कर्ता नहीं है। जहाँ खुद को कर्ता मानता है वहाँ 'चार्जिंग' है। 'यह सामायिक मैंने की, ये क्रियाएँ मैंने कीं', उसका गर्वरस 'खुद' चखता है, उससे 'चार्ज' होता है। गर्वरस बहुत मीठा लगता है।

जहाँ कोई भी कर्ताभाव है वहाँ समकित प्राप्त नहीं होता। 'कर्तापद' का *भान* है, तब तक 'चार्ज' होता ही रहता है। 'ज्ञानी' के बिना कर्तापद छूट नहीं सकता। अक्रम मार्ग में आपका कर्तापद 'हम' खत्मकर देते हैं। 'मैं कर रहा हूँ' वह *भान* खत्म हो जाता है और 'कौन कर रहा है' वह समझा देते हैं इसलिए 'चार्ज' होना बंद हो जाता है! तब से नया संसार बनना रुक गया! फिर क्या रहा? सिर्फ 'डिस्चार्ज' स्वरूप!

'डिस्चार्ज' होता है, उसकी कीमत नहीं है लेकिन कौन सा ध्यान बरतता है, उसकी कीमत है। 'चार्ज' हमेशा 'डिस्चार्ज' की *भजना* करता है। हम 'डिस्चार्ज' होती हुई चीज़ों को आधार नहीं देते। आप 'डिस्चार्ज' होती हुई चीज़ों को आधार देते हो। वह आधार देने से वापस 'चार्ज' होता है। वह 'चार्ज' होता है, वही संसार की अधिकरण क्रिया है! बहुत गूढ़ 'साइन्स' है यह! यह सारा 'साइन्स' आपको समझना तो पड़ेगा न?

गर्वरस चखें, वहाँ चार्ज होता है

आप जप करते हैं तो पैर और सब, इस तरह से ठीक रखने पड़ते हैं न? और सिर दर्द न हो रहा हो तो होता है न? वर्ना सिर दर्द हो रहा हो, बुखार आया हो, तो नहीं होता न? फिर

आपको करना हो तब भी? इसलिए वह प्रारब्ध है। जिसमें परावलंबी है वह सब प्रारब्ध है। एक अच्छा है और होता है और एक अच्छा नहीं है इसलिए नहीं होता, उसे परावलंबी कहा जाएगा न? और वह सब रिलेटिव कहा जाएगा न? सुख निरालंब नहीं होना चाहिए?

एक महाराज दूसरे उनके जोड़ीदार महाराज से क्या कह रहे थे? 'मैंने चार सामायिक कीं, आपने दो ही की हैं अभी तक!' अगले दिन हमने महाराज से पूछा न कि, 'महाराज, आज कितनी सामायिक की?' तब कहते हैं, 'आज तो नहीं हुई'। उनसे पूछा, 'क्यों आपने उस दिन चार की थी न?' तब कहते हैं, 'यह पैर दर्द कर रहा है।' 'तब सामायिक पैर ने की थी न?' हमने पूछा न, 'आपने की' थी या पैर ने की थी?' तब कहते हैं, 'उस दिन तो मैंने की थी।' ओहोहो! और यह आपने की थी? यह सब ठीक हो तभी करते हैं न? इसलिए परावलंबी है। यह तो इगोइज़म उसका गर्वरस चखता रहता है, 'मैंने की! मैंने की!' और गर्वरस तो बहुत मीठा होता है।

अहंकार यानी खुद नहीं करता है, फिर भी कहता है कि 'मैं करता हूँ' वह आरोपित भाव है। उसे अहंकार कहा जाता है। अहंकार मुख्य चीज़ है और उसमें से मान, अभिमान, गर्व, *घेमराजी* (अत्यंत घमंडी, जो खुद अपने सामने औरों को बिल्कुल तुच्छ माने) सब तरह-तरह के शब्द बने हैं।

सामायिक के कर्ता आप नहीं हो, प्रतिक्रमण के कर्ता आप नहीं हो। यह सब तो उदयकर्म करवा रहा है जबकि ये लोग, सभी (साधु) नासमझी से ऐसा कहते हैं कि, 'मैंने किया, मैं कर रहा हूँ'। ऐसा सारा अज्ञान घुस गया है। अब, इसलिए इन लोगों ने कहा है कि 'यही गले में फाँसी।' यह सामायिक की, प्रतिक्रमण किया, यह मैंने त्याग दिया, ऐसा बोले तो वह आपके गले में फाँसी है, तूने गर्वरस चखा इसलिए! पाँच सामायिक करे तो कहता है, 'मैंने पाँच सामायिक कीं', ऐसा करके गर्वरस लेता है। वास्तव में क्या कहना चाहिए, कि 'भगवत् कृपा से पाँच सामायिक हुईं।' उसका गर्वरस नहीं लेना चाहिए।

संसार का बीज - गर्वरस

साधु-आचार्यों या दूसरे, किसी भी प्रकार का कार्य करते होंगे तो उन्हें ऐसा पता होगा कि यह मैं नहीं करता और यह दूसरा कोई करता है? ऐसा पता हो तो अहंकार करेगा ही नहीं। सब कुछ परसत्ता ही करती है और खुद मानता है कि 'मैं करता हूँ'। व्यापार करते हैं, तब मन में क्या मान बैठते हैं कि मैंने कमा लिया। अब यह परसत्ता ही करती है। इतनी भी सत्ता खुद की नहीं है वहाँ पर भी कहता है, 'मैं ही करता हूँ यह सब, धर्म में भी मैं करता हूँ।' संसार में तो करता है तो वह मानो कि ज़ोखिम ही है, परंतु यह तो धर्म में ज़्यादा ज़ोखिम होता है। देखो न, कितना आश्चर्य है इसके पीछे! ये सब अनंत जन्मों से भटकते रहते हैं।

एक अक्षर भी कोई कुछ कर सके ऐसा है? हो तो मुझे बताओ! फिर भी वापस इस तरह फूल उत्साह से कहते हैं, 'मैंने ही किया' और लोग गवाही में हाँ कहते हैं, कि आँखों से देखा है, ऐसे गवाह हैं। बोल क्यों नहीं रहे हैं? गवाह नहीं हैं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, गवाही देते हैं।

दादाश्री : हम कहते हैं कि 'नहीं, तू कुछ नहीं करता'। तब कहता है, 'क्यों आप तो यह देख रहे हैं न?' यह भी वह करता है, तो कहो,

अब यह कैसे समझ में आ सकता है? वह किस गाँव गया हुआ है? वह किस गाँव की बात कर रहा है? कुछ मेल ही नहीं बैठता। इसके साथ क्यों मेल बैठा रहा है? करता है दूसरा और कहता है, 'मैं कर रहा हूँ', वह भयंकर गुनहगार है! ज़बरदस्त फाँसी कही जाती है। उसे फिर कहते हैं, 'क्रिया करत है, धरत है ममता, ये ही गले मैं फाँसी!'

जगत् में कोई कर्ता नहीं है। 'मैं करता हूँ', यह 'इगोइज़म' है। 'इगोइज़म' की छत्रछाया में भ्रांति रही हुई है। कर्तापद वही भ्रांतिपद है। फिर अशुभ करो या शुभ करो, दोनों भ्रांति हैं। एक है सोने की ज़ंजीर और दूसरी है लोहे की ज़ंजीर!

गर्व अर्थात् 'जहाँ खुद नहीं करता है' वहाँ पर 'करता है' ऐसा मानना। उस समय रस उत्पन्न होता है अंदर, गर्वरस उत्पन्न होता है। वह बहुत मीठा लगता है, इसलिए उसे मज़ा आता है कि 'मैंने किया'! गर्व से संसार खड़ा रहा है। संसार का बीज ही गर्व है।

सुख रिपे करना है दुःख भुगतकर

अनादि का अभ्यास है न, वह मुक्त नहीं होने देता। उसकी वजह से मिठास बरतती है। वह मिठास शुद्धात्मा को नहीं बरतती, वह अहंकार को बरतती है। अतः उसे तोड़ते रहना पड़ेगा। दोनों को अलग देखना चाहिए। अलग ही देखना पड़ेगा, तभी हल आएगा।

कड़वा कहने वाला इस दुनिया में कोई मिलेगा ही नहीं। कड़वा शब्द सुनने का मौका ही न आए, वैसा हमारा जीवन होना चाहिए। फिर भी कड़वे शब्द सुनने पड़ें तो सुन लेना। वह तो हमेशा हितकारी ही होता है।

बेटा 'पापाजी, पापाजी' करे तब वह कड़वा लगना चाहिए। अगर मीठा लगा तो उसे सुख उधार लिया कहा जाएगा। उसे फिर दुःख के रूप में लौटाना होगा। बेटा बड़ा होगा, तब आपको कहेगा, 'आप में अक्ल ही नहीं हैं।' तब हमें सोचोगे कि ऐसा क्यों? आपने वह जो उधार लिया था, उसे वसूल कर रहा है। इसलिए पहले से सावधान हो जाओ। हमने तो उधार का सुख लेने का व्यवहार ही छोड़ दिया था।

अब, ये जो सुख लेते हो न, वे सब तो लोन पर लेते हो। उन्हें वापस रिपे (चूकते) करने पड़ेंगे। इसलिए सावधान होकर चलो। लोन पर लिए हुए सारे सुख रिपे करने पड़ेंगे। ये वाइफ से, बेटे से सुख ले रहे हों न, लोन पर ले रहे हों, उन्हें रिपे करने पड़ेंगे। जितना रिपे करने की आपकी शक्ति है उतना लोन पर लेना, वर्ना बाद में सहन नहीं होगा।

प्रश्नकर्ता : संसार भोगने में सुख चखा है, तो बाद में उसके दुःख किस प्रकार से आएँगे?

दादाश्री : वह लोन तो इतना भारी पड़ेगा तब मरने के विचार आएँगे कि अब कहाँ जाकर मरूँ! जब इसका लोन रिपे करने का समय आएगा न, तब पता चलेगा। अभी तो पत्र नहीं आया रिपे करने का, इसलिए सोच-समझकर यह लोन लेना! लोन लूँगा न तो रिपे करना पड़ेगा, ऐसा समझकर लेना। ये जितने भी सांसारिक सुख हैं न, उन सबको रिपे करने पड़ेंगे।

ओहो! खुद के आत्मा में अनंत सुख है! उसे छोड़कर इस भयानक गंदगी में क्यों पड़ना है?

विरोधाभासी अनुकूल सिद्धांत

ये लोग तो कमाते हैं तब कहते हैं 'मैंने कमाया'। 'मैंने कमाया' कहते हैं तब गर्वरस चख लेते हैं पूरा! और नुकसान होता है तब किसी

और के सिर पर आरोप लगाते हैं। नुकसान होता है तब कहते हैं, 'भगवान ने मेरा नुकसान किया है।' इस तरह आरोप लगाते हैं।

प्रश्नकर्ता : अनुकूल (मनमुताबिक) सिद्धांत हो गया।

दादाश्री : हाँ, अनुकूल लेकिन उस पर (भगवान पर) ऐसा आरोप नहीं लगाना चाहिए। वकील पर आरोप लगाया जाए और किसी पर आरोप लगाया जाए वह तो ठीक है, लेकिन क्या भगवान पर आरोप लगाना चाहिए? वकील तो दावा करके हिसाब माँगेगा लेकिन इसके लिए कौन दावा करेगा? इसके फलस्वरूप तो अगले जन्म में (संसार की) भयंकर जंजीर मिलेगी। भगवान पर आरोप लगाना चाहिए क्या?

प्रश्नकर्ता : नहीं लगाना चाहिए।

दादाश्री : और वह फिर इतना ही नहीं, सिर्फ भगवान पर ही नहीं। फिर कहता है, 'माय स्टार्स आर नोट फेवरेबल (मेरे ग्रह अच्छे नहीं हैं)।' लो! अरे, स्टार्स (ग्रहों) को क्यों बदनाम करता है? यह तो पुण्य के आधार पर, खुद की इच्छानुसार होता है तब कहता है, 'मैंने किया' और नुकसान हो जाए तब 'भगवान ने किया' कहता है! वर्ना कहता है, कि मेरे ग्रह खराब हैं! और वे ग्रह फिर सीधे बाधा नहीं डालते। आपके अंदर जो-जो बैठे हैं न वे ग्रह, वे ही बाधा डालते हैं।

गर्वरस चखती है, वह अतिरिक्त बुद्धि

इस जगत् में सारी क्रियाएँ जो हो रही हैं, वे बुद्धि से ही हो रही हैं। ज्ञान की उसमें ज़रूरत नहीं है। 'ज्ञान', ज्ञान में ही है और बुद्धि से जो क्रियाएँ होती हैं, उन्हें भी 'ज्ञान' जानता है!

ज्ञान में कुछ करना नहीं होता, बुद्धि में करना होता है। बुद्धि की वजह से अहंकार रहा हुआ है। अहंकार की वजह से संसार रहा हुआ है। जब अहंकार-बुद्धि दोनों का उपयोग नहीं होगा तब ज्ञानप्रकाश होगा! संपूर्ण प्रकाश! अंत में बुद्धि रहित विज्ञान होगा तब काम होगा।

प्रश्नकर्ता : वह बुद्धि की बात निकली थी न कि, बुद्धि को अन्डरहैन्ड (नौकर) की तरह रखना चाहिए, वर्ना बुद्धि बॉस की तरह रहेगी, इसे ज़रा स्पष्ट कीजिए न!

दादाश्री : बुद्धि का *चलण* (वर्चस्व) हो तो बुद्धि बॉस बन बैठती है और जान-बूझकर धोखा खाए तो बुद्धि समझ जाती है कि यहाँ तो मेरा *चलण* नहीं रहा। वर्ना बुद्धि जान-बूझकर धोखा नहीं खाने देती। वह प्रोटेक्शन (रक्षण) ढूँढ ही निकालती है लेकिन आप जान-बूझकर धोखा खाते हैं तब बुद्धि शांत हो जाती है 'यस मेन' (हाँ में हाँ मिलाने वाली) हो जाती है फिर, अन्डरहैन्ड की तरह रहती है।

प्रश्नकर्ता : और उसके बावजूद व्यवहार का काम नहीं बिगड़ता?

दादाश्री : कुछ भी नहीं बिगड़ता। व्यवहार का काम कैसे बिगड़ सकता है? व्यवहार को सुधारने के लिए तो, बुद्धि अपना काम करती ही रहती है। यह तो अतिरिक्त बुद्धि आपको परेशान करती है।

प्रश्नकर्ता : यदि व्यवहार में नॉर्मल बुद्धि हो और यह जो एक्सेस बुद्धि है, इनमें खुद कैसे समझ सकता है कि यह एक्सेस बुद्धि है?

दादाश्री : बात-बात में इमोशनल करती है, वह एक्सेस बुद्धि। वह सेन्सिटिव हो जाता है। बहुत सेन्सिटिव स्वभाव का है, ऐसा नहीं कहते?

प्रश्नकर्ता : वह एक्सेस बुद्धि है, उसके सामने खुद कैसे 'फेस' (सामना) करें? यह जो

इमोशनल करती है, सेन्सिटिव करती है वहाँ पर किस-किस प्रकार से ब्रेक लगानी है?

दादाश्री : इस भाई को पुलिस वाला पकड़ने आए तब तू उसे बता देगा कि, 'तू इधर से चला जा, पुलिस वाले आए हैं।' इस तरह पिछले दरवाज़े से निकाल देते हैं, उसे अतिरिक्त बुद्धि कहते हैं। उस व्यक्ति में बुद्धि नहीं थी और समझ में नहीं आ रहा था, तब आपको रास्ता बताना पड़ा न? वह कहता भी है कि, 'आपने मुझे बाहर निकाला, वह अच्छा हुआ।' तब खुद मन में फुलता है कि, 'चलो, अपना व्यवहार अच्छा हुआ!' इस प्रकार खुद गर्वरस चखता है, वह अतिरिक्त बुद्धि। लेकिन वह फिर बॉस बन बैठती है न! फिर अपनी बाबत में भी वह ऐसा करती है, अपनी मर्यादा नहीं रखती।

प्रश्नकर्ता : अपनी बात में यानी किस प्रकार से?

दादाश्री : यह बुद्धि आप से कहेगी कि 'यह करो, करो और करो ही। और कुछ नहीं करने दूँगी। यानी बुद्धि बॉस की तरह रहेगी, वह तुझे डाँटेगी। तुझे कहेगी, 'आप में अक्ल नहीं है। आप भाई के सामने बोलो। इस तरह उसके साथ कब तक रास आएगा?' ऐसे तुझे डाँटेगी। फिर (आप) भाई के सामने भी बोलोगे। 'हट जाओ, आप कह दो', वह सब अहंकार नहीं है, वह बुद्धि है। तू ऐसा नहीं जानता था?

प्रश्नकर्ता : बुद्धि ऐसा दिखाए, उसके सामने कैसे डीलिंग करें?

दादाश्री : कहा न भाई, ऐसी बुद्धि को नौकर बना दो, बॉस नहीं। एक महीने तक ठगे जाओगे तो धीरे-धीरे बुद्धि का *चलण* कम हो जाएगा। 'मेरा *चलण* नहीं है' ऐसा बुद्धि कहेगी फिर।

प्रश्नकर्ता : यह एक्सेस बुद्धि जो दिखाई देती है उसे समझा-पटाकर या उसका विरोध करके फेस कर सकते हैं?

दादाश्री : कहा न, जान-बूझकर ठगे जाओ।

प्रश्नकर्ता : लेकिन बुद्धि तो इतना शोर मचाती है तो उसके पक्ष में एक हो जाते हैं, उसका क्या?

दादाश्री : किस प्रकार से एक हो जाते हैं? चावल वह चावल और दाल वह दाल, खिचडी में अलग ही रहते हैं न? फिर चाहे कुछ भी हो। एक बार अलग करना पड़ता है। फिर वे एक नहीं होते।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का *चलण* हो और उसी के आधार पर चले तो फिर अंदर अंतरदाह उत्पन्न होता है और इमोशनलपन उत्पन्न हो जाता है न?

दादाश्री : बुद्धि का *चलण* हो तो इमोशनल हो जाता है, लेकिन अंतरदाह नहीं होता। अंतरदाह तो अहंकार खड़ा होता तब होता है।

प्रश्नकर्ता : यह स्पष्टीकरण तो पहली बार सुना, लेकिन बुद्धि बढ़ती है वैसे-वैसे जलन बढ़ती जाती है, ऐसा भी कहा है न?

दादाश्री : हाँ, लेकिन वह तो उन अहंकार वालों के लिए।

प्रश्नकर्ता : यानी अहंकार होता ही है उसमें?

दादाश्री : हाँ, अहंकार होता है उसमें।

'मैं कुछ हूँ' मान बैठा अहंकार

प्रश्नकर्ता : आसपास का व्यवहार भी ऐसा होता है कि खुद की कोई गिफ्ट है, उसमें खुद का अहंकार पुसाता है और उसे ऐसी आदत ही पड़ी हुई है कि जहाँ जाए वहाँ खुद को सभी

लोग ऐसे-ऐसे करते हैं (मान देते हैं), आप कुछ ऐसे-ऐसे हैं, कहते हैं इसलिए फिर अंदर बहुत मीठा लगता है न! इसलिए खुद का 'मैं'पन पूरा क्रेक (पागल अहंकार) होता जाता है न?

दादाश्री : लेकिन वह निर्जीव है। अपना ज्ञान देने के बाद जीव नहीं रहता।

प्रश्नकर्ता : जीव नहीं रहता, लेकिन निर्जीव परेशान करता है न?

दादाश्री : निर्जीव नहीं बढ़ेगा। जो है उतने का हल आ जाएगा।

प्रश्नकर्ता : औरों को उससे नुकसान होता है न?

दादाश्री : ऐसा तो नुकसान होता है। खुद को और औरों को, दोनों को नुकसान होता है। लेकिन निर्जीवपना है इसलिए दोनों को इतना अधिक नहीं होता, ज्ञान में से गिर जाएँ ऐसा नहीं होता। वर्ना उन्हें यह ज्ञान कब का ही फर्स्ट क्लास हो चुका होता। लेकिन यह तो ज़रा दखल करता है कि, 'मैं कुछ हूँ', 'मैं कुछ हूँ', उस 'मैं' का रह गया है। उस 'मैं' को निकालना चाहता हूँ लेकिन निकलता नहीं है।

वह 'मैं' सेन्सिटिव हो गया इसलिए यह सारा दखल होता है। मैंने कहा, 'अरे, नहीं है किसी में! मैं ही नहीं न किसी में, तो आप कहाँ से आ गए?' तब भी उनका 'मैं' नहीं जाता। वर्ना यह ज्ञान प्रकट हो जाए, खिल उठे, ऐसा है। 'मैं' का भला क्या करना है? 'मैं' को तो निकालना है। इसलिए हमारा तरीका आपको समझा देता हूँ। किसी में दखल ही करने जैसा नहीं है।

यह तो हर एक बात में बोलेगा। घड़ी की बात निकालकर 'फलाना होता है, फलाना...' अरे, तू किस बारे में समझता है ऐसा? संडास जाना आता नहीं है और बिना बात के लोग दखल करते रहते हैं और अंदर 'मैं' 'मैं' करते रहते हैं। कर्म के अधीन हैं बेचारे!

अहंकार 'मैं कुछ हूँ' मान बैठा न! इतने शब्द बोलते हैं न, वे सारे ही शब्द वापस आ जाते हैं। कहेगा, 'आपको क्या है?' उससे आप समझ नहीं जाएँगे कि आपके शब्द आपको वापस दे दिए हैं इस व्यक्ति ने? तो फिर से बोल ही कैसे सकते हैं? यह जितना सामान है न, सारा अहंकार का। उसे संपूर्ण जड़ से निकाल न दें तब तक फिर से सब कुछ उत्पन्न होने में देर ही नहीं लगेगी। कौन से संयोगों में कब निकल आएगा वह कहा नहीं जा सकता। अत: इसका क्या करना है? अज्ञानता तो गई अब। अब अहंकार को खोदने का प्रयत्न करना पड़ेगा। यह ज़रूरत वाला अहंकार वह तो ड्रामेटिक है ही, लेकिन भीतर दूसरे उलझते रहते हैं चुपचाप, वह पता नहीं चलता।

इतनी अधिक करुणता वाली लाइफ है और उसमें ऐसे अहंकार करने जाएँ, पागलपन करने जाएँ और बहरापन आ जाए तो? या फिर चश्मे लग जाएँ तो, किसलिए अहंकार करते हैं? जो आधार देने लायक व्यक्ति हैं, उनमें अहंकार नहीं होता। जो आधार देने जैसे नहीं होते, वहाँ सारा अहंकार होता है!

हमें संसार का कुछ भी नहीं आता

मुझे तो भाषण देना भी नहीं आता। यह 'ज्ञान' है इतना ही आता है, दूसरा कुछ नहीं आता इस जगत् में। और दूसरा कुछ नहीं आया इसलिए तो यह आया! और कहीं सीखने भी नहीं गया। नहीं तो जिसे देखो वह गुरु बन बैठेगा। उसके बजाय इसमें 'एक्सपर्ट' तो हो जाएँ, निर्लेप तो हो जाएँ!

मुझे तो संसार के मामले में कुछ भी नहीं

आता है और स्कूल में भी कुछ नहीं आता था। बस इतना ही आता था कि *ऊपरी* नहीं चाहिए। वही बड़ी झंझट लगी थी। सिर पर कोई *ऊपरी* नहीं चाहिए! फिर चाहे कुछ भी खाने-पीने का हो, उसमें हर्ज नहीं है लेकिन सिर पर कोई *ऊपरी* नहीं चाहिए। यह जो शरीर है, वह शरीर अपना 'एडजस्टमेन्ट' लेकर ही आया है।

अब यह 'ज्ञान' ऐसा है न, कि यह सभी काम कर देता है। बाकी, हमें संसार का कुछ भी काम नहीं आता। लेकिन फिर भी काम अच्छा चलता है, सब से अच्छा चलता है। सब लोगों को तो चिल्लाना पड़ता है। मुझे तो चिल्लाना भी नहीं पड़ता। फिर भी उनकी जितनी कुशलता है, उससे भी ज़्यादा अच्छा काम होता है। अब जिन्हें चप्पल सिलनी आती है, उसे चप्पलें सिलते रहना है! कपड़े सीलना आए, उसे कपड़े सीलते रहना है! और जिसे कुछ नहीं आए, उन्हें फालतू बैठे रहना है। कुछ आए नहीं, तो क्या करे फिर?!

क्योंकि भगवान ने क्या कहा है कि जिसे कुछ भी आता है, वह ज्ञान अहंकार के आधार पर टिका है। जिसे नहीं आता है उसे अहंकार ही नहीं है न! अहंकार हो तो आए बगैर रहेगा नहीं न! मुझे तो सिर्फ यही आता है। फिर भी लोगों के मन में भ्रम है कि दादा सब जानते हैं! लेकिन क्या जानते हैं ये? कुछ भी नहीं जानते। 'मैं' तो 'आत्मा' की बात जानता हूँ, 'आत्मा' ज्ञाता-द्रष्टा है, वह जानता हूँ, 'आत्मा' जो भी देख सकता है वह 'मैं' देख सकता हूँ लेकिन और कुछ नहीं आता। अहंकार होगा तब आएगा न! अहंकार बिल्कुल ही निर्मूल हो गया है। उसकी जड़ तक भी नहीं बची है, कि इस जगह पर था और उस जगह पर से उसकी कोई सुगंधी तक नहीं आती, इतनी हद तक जड़ें निकल चुकी हैं। उसके बाद वह पद कितना मज़ेदार होगा!

यह तो हमारी कितने ही जन्मों की साधना होगी कि एकदम से फल हाज़िर हो गया! बाकी, इस जन्म में तो कुछ भी नहीं आया। कुशलता तो मैंने किसी व्यक्ति में देखी ही नहीं है।

यह मोची है, उसे कम आता है, इसलिए जूते बनाता है लेकिन बारह महीनों नुकसान ही नुकसान करता है। उसी तरह इस काल के जीव भी नुकसान ही करते हैं। थोड़े कुशल होते हैं वे फायदे की बजाय नुकसान ज़्यादा करते हैं। सारा चमड़ा बिगाड़ देते हैं। जूते भी सिलता है और पाँच सौ जूतों का चमड़ा बिगाड़ देता है! वहाँ क्या नफा हुआ? मेहनत की और बेकार ही नुकसान हुआ। यानी मुख्य व्यापार में नुकसान होता है। इस संसार में जो फायदा होता है, नुकसान होता है, वह तो पुण्य के अधीन है। उसमें ये लोग क्या कमाने वाले थे? यह तो पुण्य की कमाई है! जबकि ये अक्कल के बोरे जूते ही घिसते रहते हैं! इसलिए हम तो शून्य ही हैं, कुछ आता ही नहीं था ऐसा समझकर चलो न! सब मिटा करके नीचे नये सिरे से रकम लिखनी है। कौन सी रकम? हमारी शुद्धात्मा की रकम पक्की! निर्लेप भाव, असंग भाव सहित! यह तो यहाँ पर संपूर्ण रकम दी हुई है। 'दादा' ने शुद्धात्मा दिया तब शुद्धात्मा हुए। नहीं तो कुछ था ही नहीं, पैसे भर का भी सामान नहीं था!

कुशलता, 'एक्सपर्ट' होने से रोके

हमें लिखना-करना नहीं आता, पेन भी पकड़ना नहीं आता। हमें कुछ भी नहीं आता। संसार का कुछ भी नहीं आए, उनका नाम 'ज्ञानी'। हम अबुध कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : आप अपने आप को अबुध कहते हैं, पर प्रबुध लगते हैं हमें।

दादाश्री : पर मैं तो हर एक बात का अनुभव

करके कहता हूँ। आज सत्तर वर्ष की उम्र हुई, परंतु अभी तक मुझे दाढ़ी बनानी नहीं आती। लोग मन में मानते हैं कि उन्हें दाढ़ी बनानी आती है, वह सब इगोइज़्म है। कुछ ही, बहुत कम लोगों को दाढ़ी बनानी आती होगी। मुझे खुद को भी समझ में आता है, कि मुझे यह रेज़र किस तरह पकड़ना चाहिए, कितनी डिग्री से पकड़ना चाहिए, उसके बारे में कुछ मालूम नहीं है। उसके एक्सपर्ट हम नहीं हुए हैं। जब तक मैं एक्सपर्ट नहीं हुआ, तब तक हमें नहीं आता है ऐसा ही कहा जाएगा।

प्रश्नकर्ता : एक्सपर्ट होने में आपको फायदा नहीं दिखा न?

दादाश्री : फायदे की बात नहीं, परंतु 'जैसा है वैसा' मैं कह देता हूँ कि मुझे दाढ़ी बनानी नहीं आती। आपको लगे कि, ऐसा तो किस तरह हो सकता है? परंतु आपको आता है वही गलत है। वह सिर्फ 'इगोइज़्म' है। कुछ को तो ब्लेड का उपयोग करना भी नहीं आता। ब्लेड काम में आ चुकी या नहीं, वह भी नहीं जानते। यह तो सारा पोलम्पोल चलता रहता है!

प्रश्नकर्ता : एक्सपर्ट अर्थात्?

दादाश्री : मनुष्य एक्सपर्ट नहीं हो सकता। एक्सपर्ट, वह तो कुदरती देन है। इस आत्मविज्ञान में मैं भी एक्सपर्ट हुआ हूँ, वह भी कुदरती देन है। नहीं तो मनुष्य ज्ञानी किस तरह बन सकता है? इसलिए हम कहते हैं कि 'दिस इज़ बट नेचुरल।'

अरे, मुझे तो चलना भी नहीं आता। लोग कहें कि दादा बहुत अच्छा चलते हैं! पर मैं तो ज्ञानदृष्टि से देखता हूँ, इसलिए मुझे पता चलता है कि मुझे चलना भी नहीं आता।

प्रश्नकर्ता : परंतु हमें तो आपका सबकुछ आदर्शरूप ही दिखता है।

दादाश्री : ऐसा लगता है, पर मैं ज्ञानरूप से देखता हूँ, अंतिम स्थिति के चश्मे से देखता हूँ, इसलिए अंतिम लाइट से यह सब कच्चा लगता है।

कुछ लोग मुझे कहते हैं कि दादा, आपके साथ बैठकर हम भोजन करना सीख गए। अब मैं अपने आप को जानता हूँ न कि मुझे भोजन करना ही नहीं आता। भोजन करने वाले का फोटो कैसा होना चाहिए, कैसा चारित्र होना चाहिए, वह हमें लक्ष में होता ही है। परंतु वैसा किसे होता है? बख़्शिश वाले को होता है।

एक ओर अहंकार हो और एक ओर 'एक्सपर्ट' होना, वे दोनों साथ में हो ही नहीं सकते। अहंकार ही 'एक्सपर्ट' होने से रोकता है।

इसलिए हम 'अबुध' हैं वह अनुभवपूर्वक कह रहे हैं, ऐसे ही नहीं कहते। फिर भी आपको प्रबुध दिखते हैं वह आपकी दृष्टि है। मेरी दृष्टि कहाँ होगी, वह आपको समझ में आया? हमारी चरम दृष्टि है।

व्यापार में भी मैं खुद को 'एक्सपर्ट' मानता था। उसे भी, यह ज्ञान होने के बाद तटस्थ दृष्टि से देखा, लोगों को व्यापार करते हुए देखा तब मैं समझ गया कि यह तो कुछ आता ही नहीं। यह तो केवल 'इगोइज़्म' ही है। कुछ पाँच लोग मानें, स्वीकार करें, इसलिए क्या सारी कुशलता आ गई?

प्रश्नकर्ता : आपकी दृष्टि से अबुधता ठीक है, पर व्यवहारिक दृष्टि से?

दादाश्री : 'मैं बुद्ध हूँ' वह भान और यह ज्ञान, वे दोनों साथ में रह ही नहीं सकते। हमारे पास ज्ञान का फुल प्रकाश है, इसलिए हमें बुद्धि की ज़रूरत ही नहीं न! बुद्धि 'इमोशनल' करवाती है और ज्ञान मोशन (संतुलन) में रखता है।

हमें संसार विस्मृत हो चुका है। हमें हस्ताक्षर करना भी नहीं आता। पंद्रह-बीस वर्षों से कुछ लिखा ही नहीं इसलिए सब विस्मृत हो गया है। यह संसार अपने आप विस्मृत हो जाए, ऐसा है। उसके लिए इतने सारे प्रयोग करने की ज़रूरत नहीं है। परिचय छूटा कि विस्मृत हो गया। यानी परिचय छूट जाना चाहिए। साधारण व्यवहार में हर्ज नहीं है, पर परिचय में हर्ज है।

यह तो हमारा यशनाम कर्म

कोई कहता है, 'घर पर मेरे भाई को बुखार बहुत रहता है, आज पंद्रह-बीस दिनों से उतरता नहीं है।' मेरी एक माला उसे देता हूँ न, तब दूसरे दिन पत्र आता है कि बुखार बिलकुल चला गया है। माला पहनते ही चला गया है। ऐसे बहुत सारे 'केस' होते हैं। यह तो हमारा यशनाम कर्म है। और वे संत भी जो चमत्कार करते हैं न, वह भी यशनाम कर्म होता है।

पहले तो अपने यहाँ फूलों के हार पहनाते थे। तब पाँच-पच्चीस हार होते थे, वह कोई व्यक्ति यहाँ से लेकर जाते और फिर अस्पताल में जाकर वहाँ मरीज़ों को पहनाते थे और उन्हें कहते, 'दादा भगवान के असीम जय जयकार हो' बोलो। तो सुबह डॉक्टर कहते कि 'इन मरीज़ों में इतना फर्क किस तरह आया?'

प्रश्नकर्ता : फिर भी वह चमत्कार जैसा नहीं है, ऐसा आप कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, चमत्कार किया वैसा हम नहीं कहते और यह जो सुना न, उससे तो कई बड़े हो चुके हैं, जगत् आफरीन हो जाए वैसे हुए हैं, पर उन्हें यदि चमत्कार कहोगे तो दूसरों के चमत्कार चलते रहेंगे। इसलिए मैं इन चमत्कारों को तोड़ने के लिए आया हूँ। असल में, हक़ीक़त में, वास्तविकता में वह चमत्कार है ही नहीं।

यह हमारा फोटो भी बहुत काम करता है। इसलिए लोगों को हम आखिर में फोटो देते हैं क्योंकि इतना यदि काम नहीं करे तो ये 'बर्तन' चमकाए जा सकें ऐसे नहीं हैं। बर्तन इतने अधिक गंदे हो गए हैं कि चमकाए जा सकें ऐसे नहीं है। इसलिए यह कुदरत उसके पीछे काम कर रही है। सब हो रहा है, चमत्कार नहीं है यह! ऐसे-ऐसे तो रोज़ कितने ही पत्र आते हैं कि 'दादा, उस दिन आपने कहा था कि जा, तुझे नौकरी मिल जाएगी, तो मुझे नौकरी मिल गई!' यह सब कुदरत करती है!

मुझे बहुत सारे लोग कहने आते हैं कि 'दादा, आपने ही यह सब किया है। यह चमत्कार आपने ही किए हैं।' तब मैं कहता हूँ, 'भाई, मैं तो चमत्कारी नहीं हूँ। मैं कोई जादूगर नहीं हूँ और ऐसा कुछ मैं कर सकूँ वैसा नहीं हूँ।' तब कहते हैं, 'यह किया किसने?' यह तो ऐसा है न, दादा खुद का यशनाम कर्म लेकर आए हैं, यानी दादा का यशगान होता है और वह हमारा यशनाम कर्म आपका भला करता है। आपका निमित्त होता है उसमें, इसमें मेरा क्या? मैं कर्ता नहीं हूँ न उसमें? इसलिए मैं कहाँ ऐसा माल खा लूँ? ये लोग तो बिना काम के यश देने के लिए आते हैं और वे यश खाने वाले सभी यश खाते रहते हैं। लोग तो यश के भूखे होते हैं, वे खाया करते हैं। ये संत पुरुष भी खा जाते हैं, पर वह उन्हें पचता नहीं है बेचारों को, उल्टे अधिक भटकते हैं!

हर किसी के जो यशनाम कर्म होते हैं न, इसलिए उन्हें यश मिलता है। जो थोड़ा भी संत हुआ हो, उन्हें थोड़ा यशनाम कर्म होता है, और हमारा यशनाम कर्म बड़ा! मुझे तो संसारी दशा में भी यश मिलता था। यों ही हाथ लगाऊँ न, तो भी उसके पास रुपयों का ढेर हो जाता था।

इसलिए यह मैंने नहीं किया है। यह तो हमारा यशनाम कर्म जो है, तो यह नामकर्म ही आपको सारा फल देता है और उसे लोग चमत्कार मानें, वैसा सिखाया गया! चमत्कार तो हो ही नहीं सकते। मैं एक तरफ ऐसा भी कहता हूँ कि वर्ल्ड में किसीको संडास जाने की शक्ति नहीं है, तो चमत्कार किस तरह करेगा?

कई लोग फिर आकर कहते हैं, 'दादाजी, मैं ऐसे फँस गया हूँ। तो मेरा कुछ हल ला दीजिए न।' तो मैं विधि करूँ उसके बाद वे छूट जाते हैं। इसलिए क्या वह मैंने किया? नहीं। मैं निमित्त था इसमें। ये यशनाम कर्म था मेरा!

एक आदमी ने करोड़ रुपयों का मेरे साथ सौदा किया। कहता है, 'मेरी करोड़ रुपये की ज़ायदाद सारी फँस गई है और मेरे पास आज 'मेन्टेनन्स' (गुज़ारा) करने के भी पैसे नहीं हैं।' इसलिए सबने कहा, 'इसकी कुछ विधि कर दीजिए न, बेचारे की कुछ ज़ायदाद बिके'। उसे ज़ायदाद तीन-तीन वर्षों से बेचनी थी, वह बिक नहीं रही थी। तो विधि कर दी, फिर एक महीने के अंदर सत्तर लाख में बिक गई। मैंने कहा, 'उस फेक्टरी में सत्यनारायण की कथा करवाओ और दूसरी फेक्टरी में जैनों की पूजा करवाओ।' वह फिर मुझे कहता है, 'दादाजी, तीस लाख की बाक़ी है, कुछ करो न!' मैं समझ गया कि इस आदमी के साथ सौदा भूल से हो गया है। यह आदमी भगवान का उपकार माने तो बहुत हो गया। मुझे तेरे पास से कुछ लेना नहीं है। तू भगवान का उपकार माने कि ओहो, भगवान के प्रताप से मैं छूट गया, उतना करे तो भी अच्छा। और यदि मैं कर्ता होऊँ तो दलाली नहीं लूँगा? ऐसा नहीं कहता कि इतने प्रतिशत रख जाना, यदि सफल हो जाए तो? इसलिए हमने बंद कर दिया वह व्यापार। काम करना और नहीं करना दोनों बंद कर दिया न!

प्रश्नकर्ता : आत्मा की बात तो जारी ही है न!

दादाश्री : वह आत्मा की बात तो, इसमें कुछ ले नहीं सकते। इसका बदला ही नहीं होता और इसका बदला देना हो तो यह बात फलेगी ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान में तो लेने की बात ही नहीं है, देने की ही बात है न इसमें तो?

दादाश्री : हाँ, बस। क्योंकि वह तो बदले में आप क्या दोगे? *पुद्गल* दोगे? दूसरा क्या दोगे? और इसकी क़ीमत यदि *पुद्गल* हो तो फिर आत्मा ही नहीं है वह। अमूल्य चीज़ की 'वैल्यू' (कीमत) नहीं होती!

सही-गलत दोनों टेप में, ज्ञानी निर्लेप

प्रश्नकर्ता : आप बहुत सुंदर दृष्टांत देते हैं।

दादाश्री : मैंने नहीं दिए। यह टेपरिकॉर्ड देती है। यह इनाम मुझे मत देना। यह टेपरिकॉर्ड बोलती है। मैं भी खुश हो जाता हूँ कि 'ओहोहो! आज टेपरिकॉर्ड सुंदर बजी।'

प्रश्नकर्ता : इस टेप में आश्चर्य भरा है!

दादाश्री : लेकिन ऐसा निकलता है तब लोग प्रेज़ेन्ट मुझे देते हैं। यह जवाब अंबालालभाई नहीं देते, यह टेपरिकॉर्ड देता है। हम इसका गर्व नहीं लेते कि 'कितना अच्छा बोला' इसलिए रिकॉर्ड अच्छा बजे तब भी मैं उसका मालिक नहीं होता हूँ और यह रिकॉर्ड तो लोग तारीफ़ करें ऐसा ही होता है न? पर हम उसके मालिक नहीं होते। मालिक होने पर पॉइज़न हो जाएगा। हम तो जिम्मेदारी ही नहीं लेते, उसकी।

कई बार तो इस टेपरिकॉर्ड को सुनकर मैं भी खुश हो जाता हूँ और कुछ दूसरा सुनते हैं फिर भी हम नाखुश नहीं होते और आप सब नाखुश हो जाते हो। तब इस तरह नाखुश तो नहीं होते हैं पर ज़रा कमज़ोर पड़ जाते हैं, फिर सुधार लो। जब सुनते हो उस समय पहले तो कमज़ोर पड़ जाते हो। उस समय कहते हैं कि दादा, ऐसा क्यों बोले? इसलिए हमें कहना पड़ता है कि यह टेपरिकॉर्ड बोलती है।

यह तो टेपरिकॉर्ड यों ही निकलती रहती है और हम तो 'यह टेपरिकॉर्ड क्या बोल रही है' वह देखते रहते हैं और जानते रहते हैं, बस! खराब बोला जाए उसे भी हम जानते हैं और अच्छा बोला जाए उसे भी हम जानते हैं। दोनों के जानकार हम हैं। उसमें सही-गलत की भी फिर ज़ोखिमदारी नहीं है। क्योंकि टेपरिकॉर्ड बोलती है, 'मैं' तो 'जानकार' हूँ। 'मैं' जुदा हूँ।

यह कौन कर रहा है, वह जानने की ज़रूरत

प्रश्नकर्ता : आपकी बात निकली थी कि अब हमारा अभिप्राय कैसा होना चाहिए कि देह में सुख नहीं लगना चाहिए, वाणी में सुख नहीं लगना चाहिए, मन में सुख नहीं लगना चाहिए और बुद्धि में सुख नहीं लगना चाहिए। तो ये सब अलग-अलग, इन्हें ज़रा उदाहरण के साथ समझाइए न!

वाणी में से सुख कैसे लेते हैं, वह ज़रा उदाहरण के साथ समझाइए न!

दादाश्री : वाणी में तो वह बोलता है न, तब सभी को मज़ा आता है, तब खुद में सुख बरतता है। इसलिए हम वाणी को क्या कहते हैं, कि यह तो टेपरिकॉर्ड बोल रही है। यानी (खुद) अलग ही हो जाता है न!

प्रश्नकर्ता : वाणी का गर्वरस लेते हैं?

दादाश्री : गर्वरस नहीं। वाणी तो जो बोलते हैं न, उससे सामने वाले खुश हो जाते हैं और उसके भीतर आनंद उत्पन्न होता है। जिससे वह आत्मा का आनंद चला जाता है उस समय। इसे चखने की आदत पड़ गई है न यह!

प्रश्नकर्ता : इसे चखना, उसी को गर्वरस कहते हैं?

दादाश्री : गर्वरस नहीं है, गर्वरस तो अहंकार करते हैं तब गर्वरस। इसे चखने में हर्ज़ नहीं है!

प्रश्नकर्ता : लेकिन यहाँ पर अपने महात्मा भी कुछ चखते हैं न!

दादाश्री : वे सभी चखते हैं। क्या कर सकते हैं उस समय?

प्रश्नकर्ता : कौन है, वह चखने वाला? वह चखने वाला कौन बचा?

दादाश्री : कौन? जिसे कड़वा लगता था वह। जिसे पसंद नहीं था, वह चखता है यह। और हम तो कहते हैं न कि भाई, यह टेपरिकॉर्ड बोल रही है। सभी खुश हो रहे हों फिर भी हमें उसमें कुछ लेना-देना नहीं है।

दूसरे बोलते हैं न, तो दो घंटे तक बोलते हैं, लेकिन बहुत आनंद आता है। वे मस्ती में ही होते हैं। सबकुछ भूल जाता है। फिर भी आत्म संबंधित वाणी बोलने में हर्ज नहीं है। आत्म संबंधित बोलता है और भूल जाता है, उसे इसके लिए आनंद आता है, उस सामने वाले व्यक्ति को भी फायदा होता है, तो उसमें हर्ज नहीं है। वह उपकारी है। भौत्तिक बातें हों, बाहर की दुनियादारी की बातें करके आनंद आए, वह नुकसानदायक है।

प्रश्नकर्ता : सामने वाला हमसे अच्छा बरताव करे, तो वहाँ पर सहज ही अंदर सुख उत्पन्न होता है, तब फिर वहाँ पर कौन सा उपाय करना बाकी रहा?

दादाश्री : उपाय किसलिए करना है?

प्रश्नकर्ता : तो?

दादाश्री : आपको अलग हो जाना है। यह गलत है, ऐसा जाना ले, तब भी बहुत हो गया। मैं तो जानने के लिए कहता हूँ, करने के लिए नहीं कहता।

प्रश्नकर्ता : वाणी का सुख, देह का सुख, अब मन का सुख खुद लेता है, उसका उदाहरण दीजिए न! मन में सुख नहीं लगना चाहिए, उसका क्या उदाहरण है?

दादाश्री : यहाँ पर किसी महात्मा के संबंधित विचार करे, उनका हल कैसे लाए, ऐसा सब उस समय महात्मा का विचार करते हैं, इसलिए आपको सुख बरतता है। वह मानसिक सुख है। देरासर के लिए आप कुछ काम करके आए हो और उसके लिए विचार करते हो न, उसे सभी विचार आते हैं उस समय बहुत आनंद होता है, मानसिक आनंद। देरासर का काम जिनको सौंपा है, आरस के पत्थर निकालता है, उन्हें कितना आनंद आता होगा?

प्रश्नकर्ता : चेक अलमारी में रखने को दे, तब भी आनंद आता है।

दादाश्री : हाँ, तब भी आनंद आता है।

प्रश्नकर्ता : वहाँ पर क्या जागृति रखनी है?

दादाश्री : सारी जागृति रखनी है। आत्मा की जागृति रखनी है। यह कौन कर रहा है, यह जानने की ज़रूरत है।

प्रश्नकर्ता : यह जानने के लिए ही पूछ रहा हूँ।

दादाश्री : हाँ, जान लेना है कि यह कौन कर रहा है वह। फिर से ऐसा मेल नहीं मिलेगा। मैं क्या कह रहा हूँ कि यह जो अक्रम विज्ञान है न, ऐसा मेल नहीं मिलेगा। ये ज्ञानी फिर से नहीं मिलेंगे!

मालिकी नहीं, वहाँ गर्व नहीं

हम ऐसा कहते हैं कि टेपरिकॉर्ड बोल रही है। वर्ना 'टेपरिकॉर्ड बोल रही है' ऐसा इस दुनिया में कोई नहीं कहता। खुद की वाणी अच्छी हो न, तो 'मैं कितना अच्छा बोला, कितना अच्छा बोला' कहता रहता है। जबकि इसे हम 'टेपरिकॉर्ड' कहते हैं क्योंकि मालिकी रहित बात है यह सारी। यानी गर्व-*गारवता* (गर्कता), कुछ भी नहीं रहा न! कुछ है ही नहीं। झंझट ही नहीं न! बंधन सिर्फ कितना है? यह इतना ही, कि पूर्वजन्म में ऐसी कुछ भावना की होगी कि यह जो सुख मैंने प्राप्त किया है, वह लोग प्राप्त करें। उसी के लिए यह क्रिया है। उस भावना का फल है यह।

अर्थात् यह अलौकिक कहलाता है, यह लौकिक नहीं कहलाता। यहाँ तो हमारे वाणी, वर्तन और विनय, ये तीनों चीज़ें मनोहर हैं, मन का हरण करें, ऐसे हैं और कभी न कभी ऐसा होना चाहिए, ऐसा होना पड़ेगा। वह तो, जो वैसे बन चुके हैं उनके पीछे पड़ेंगे तो वैसा बना जा सकेगा या नहीं बना जा सकेगा?

प्रश्नकर्ता : बना जा सकेगा।

दादाश्री : बस, और कुछ करने की ज़रूरत नहीं है हमें। उनके पीछे पड़ना है। अनंत जन्मों का नुकसान एक जन्म में खत्म करना है इसलिए हृदयपूर्वक संभाल तो रखनी पड़ेगी न? कितने जन्मों

का नुकसान है? अनंत जन्मों का नुकसान! 'ज्ञानी पुरुष' की आज्ञापूर्वक अंत तक का जो भी करना हो वह कर लेना चाहिए, ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलेगा! आत्मा जानने योग्य है, लेकिन जाना जा सके, ऐसा नहीं है। उसे तो 'ज्ञानी पुरुष' की कृपा से ही जान सकते हैं। 'ज्ञानी पुरुष' 'चाहे सो करें' क्योंकि वे कर्ताभाव में नहीं हैं, लेकिन निमित्त भाव में हैं!

गर्वरस चखते ही, भीतर पोइज़न डलता है

प्रश्नकर्ता : आप बोलते हैं, उस समय ऐसे जो वाक्य निकल आते हैं, उस समय हम ज्ञानी की मुखमुद्रा ही देखते हैं...

दादाश्री : उस समय दर्शन करने चाहिए। 'ऐसे' (दो हाथ जोड़कर) कर लेना। वह पूर्ण स्थिति! वाक्य निकलता है न, उस समय ज्ञाता-द्रष्टा के रूप में निकलता है। निकलने के बाद थोड़ा इधर-उधर हो जाता है। उसी समय दर्शन करने हैं। पूर्ण स्थिति के दर्शन से वह दो आने कच्चा रहता है।

प्रश्नकर्ता : अब, उस दिन 'अलौकिक की मुहर', जो ऐसा शब्द निकला न, शब्द बाहर आया यानी टेप में से आया, लेकिन वह तुरंत टेप होकर बाहर आया था?

दादाश्री : हाँ, तुरंत।

प्रश्नकर्ता : ताज़ी टेप में से बाहर आया?

दादाश्री : ताज़ी। ये किस आधार पर टेप निकलती हैं? पूछने वाले के अनुसार टेप अंदर क्रमबद्ध हो जाती हैं। यह कोई पूछने वाला आया है, वह पूछने वाला क्या पूछेगा, वह भी अंदर टेप जानती हैं, टेप सारी तैयार हैं। एक के पीछे दूसरी, दूसरे के पीछे तीसरी, ऐसे क्रमबद्ध ही होती हैं। यह तो बीच में आपको पता नहीं चलता। बाकी, कितनी सुंदर क्रमबद्धता है!

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि 'इसके पीछे अलौकिक की मुहर है।'

दादाश्री : हाँ, अलौकिक की मुहर। परंतु वह शब्द अच्छा है। उस समय वह निकल गया। वर्ना मैं कहाँ से खोज़ता? मैं कहाँ इनकी डायरियाँ देखने जाऊँ? उस समय अपने आप निकल गया! अत: इसके पीछे कुछ है न? आयोजन है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : यह आयोजन नहीं है, साहजिक है।

दादाश्री : हाँ। बाकी सभी गर्वरस चखने के लिए कहते हैं, 'मैंने कहा, कितना अच्छा कहा!' यह भीतर पोइज़न डला। फिर इससे कल्याण नहीं हो सकता।

ज्ञान समझकर जाग्रत रहें

प्रश्नकर्ता : दादा, *लक्ष* तो उस अंतिम दशा का ही है, उस दशा के पूर्ण होने में ये जो भी कमियाँ हैं, जब समझ में आता है कि अंतिम दशा यह है और ऐसा ही होना चाहिए तब उसके लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह तो, जब वह व्यवहार सभी तरह से छूट जाएगा तब तुम्हारा काम होगा। वह कैसे? यह व्यवहार तुझसे नहीं चिपका है, तू व्यवहार से चिपका है। फिर वापस कहता है कि मैं करता हूँ। यह सब चिपक गया है। हम तो सावधान करते हैं कि भाई, ये सारी नुकसानदायक चीज़ें हैं। आपको जो चाहिए उसमें ये चीज़ें बाधक हैं, इतना सचेत करते हैं। फिर उसे अच्छी लगती हो तो करता रहे। उसमें कहाँ मेरी मनाही है?

प्रश्नकर्ता : कभी न कभी तो छूटना पड़ेगा ही न, उसमें चारा थोड़े ही है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन इसलिए ज्ञान जानना है फिर। 'कर्ता खुद है', ऐसा मानने से जगत् कायम है और 'कर्ता कौन है', ऐसा जानेंगे तो छूट जाएगा। ये 'भगवान' कर्ता नहीं हैं और 'लोग' भी कर्ता नहीं हैं। कर्ता तो कोई और शक्ति है, जो काम कर रही है। हम उसे 'व्यवस्थित शक्ति' कहते हैं।

दखलंदाज़ी न करो, उसे कहते हैं व्यवस्थित

व्यवस्थित अर्थात् चंदूभाई जो कार्य कर रहे हों, उस कार्य को आपको देखते रहना है, उसे कहते हैं व्यवस्थित। फिर जो भी कार्य करें, खराब, सही, गलत, जो भी करें वह। आप उसे देखते रहो, दखलंदाज़ी नहीं करो तो उसे व्यवस्थित कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर उसे द्रष्टा भाव में रहना कहा जाएगा न!

दादाश्री : तो वही व्यवस्थित है क्योंकि व्यवस्थित ही है वह। कुछ और गलत नहीं करना है। दखलंदाज़ी करोगे तो उल्टा होगा और जो गलत-सही है, वह माल टंकी में भरा हुआ है वह निकलता है। टंकी में नया आना बंद है। पुराना जो है वह डिस्चार्ज हो रहा है, नया चार्ज नहीं होता। यानी जो भी भरा है, कोई डामर वाला है, फिर भी जो माल भरा है वही निकल रहा है, कोई नया माल नहीं निकलता। अत: आपको क्या करना है कि चंदूभाई जो भी करें, वह आपको देखते रहना है। आपको चंदूभाई के मन में घुसने की भी ज़रूरत नहीं है। उसके मन में खराब विचार आएँ या अच्छे विचार आएँ, वे भी आपको देखते रहना है।

आत्मा की सिर्फ ज्ञानक्रिया और दर्शनक्रिया

प्रश्नकर्ता : देखने की क्रिया में भी कुछ करना तो होता ही है न?

दादाश्री : नहीं, उसमें कर्तापन नहीं होता। वह ज्ञानक्रिया कहलाती है। उसका कोई कर्ता नहीं होता। अहंकार नहीं होता। जबकि बाकी सभी क्रियाएँ अहंकार की होती हैं। भावकर्म, वे सभी अहंकार के हैं!

प्रश्नकर्ता : फिर व्यवहार में 'मात्र ज्ञाता-द्रष्टा की तरह हूँ,' ऐसे किस प्रकार से रहा जा सकता है?

दादाश्री : व्यवहार में खुद कर्ता के रूप में है और वास्तव में वह ज्ञाता-द्रष्टा है। अब व्यवहार में वह किस चीज़ का कर्ता है? तब कहते हैं, संसार का कर्ता है और वास्तव में ज्ञाता-द्रष्टा अर्थात् दर्शन क्रिया और ज्ञानक्रिया का कर्ता है। अन्य कोई क्रिया नहीं है, वहाँ पर सांसारिक क्रिया नहीं है।

'ज्ञानक्रिया' अर्थात् क्या? खुद के स्वरूप में ही रहना और जानना। दर्शनक्रिया में देखना। देखना और जानना, यही आत्मा की क्रिया है।

ज्ञान उपयोग वह ज्ञानक्रिया कही जाती है और दर्शन उपयोग वह दर्शन क्रिया कही जाती है। अब ज्ञान उपयोग क्या है? तो वह है, 'यह जो क्रिया वाला *पुद्गल* है वह खुद की क्रिया में परिणमन करता है, उन सभी क्रियाओं को देखने वाला यह ज्ञान उपयोग है! किसी भी पौद्गलिक क्रिया का कर्ता नहीं है। वह अपने खुद के स्वभाव का कर्ता है, न कि परभाव का कर्ता है।

मोक्ष के लिए ज्ञानक्रिया की ज़रूरत है। अज्ञान क्रिया वह बंधन है। क्रिया किसे कहते

हैं? अहंकारी क्रिया को अज्ञान क्रिया कहा जाता है और जो निर्अहंकारी क्रिया है, उसे ज्ञानक्रिया कहा जाता है। इसका मतलब क्या है कि जो चारित्र मोहनीय कर्म हैं। अभी खाना खाने जाएँ वे सब डिस्चार्ज कर्म हैं। अब उसे देखते रहना, वही ज्ञानक्रिया कहलाती है। उस ज्ञानक्रिया से, ज्ञान क्रियाभ्याम मोक्ष। अभी आप जो कुछ भी करते हो न, उसे 'चंदूभाई कर रहे हैं,', आप ऐसा जानते हो, 'व्यवस्थित' कर्ता है, ऐसा जानते हो। आप उसे देखते रहते हो, वह ज्ञानक्रिया है।

'केवलज्ञान' के लिए कुछ करना है?

जगत् के लोग कहते हैं, 'केवलज्ञान' करने की चीज़ है। नहीं, वह तो जानने की चीज़ है! करने की चीज़ तो कुदरत चला रही है। करना वही भ्रांति है। यह शक्ति कितने वैभव से आपके लिए कर रही है! उस शक्ति को तो पहचानो। यह तो 'व्यवस्थित' शक्ति का काम है।

यह करो, यह करो, तो फिर वे करने बैठे! इसलिए तो भगवान ऐसी मुद्रा में बैठे हैं। ऐसे पद्मासन में इस तरह से बैठे। हे भगवान! यह आप क्या सिखा रहे हैं? तो कहते हैं, चुपचाप यही करो। सहज रूप से चल ही रहा है। उसमें दखलंदाज़ी नहीं करना कि, नहीं चलाना है, ऐसा भी नहीं कहना है और चलाना है, ऐसा भी नहीं कहना है। क्या कहते हैं? दखलंदाज़ी नहीं करना।

यह ज्ञान लेने के बाद जगत् दखल रहित है। ज्ञान लेने से पहले तो सभी जगह दखल थी। लेकिन ज्ञान लेने के बाद यदि कोई दखल होती है तो व्यवस्थित को समझने में अपनी भूल हो रही है। प्रॉब्लम जैसी चीज़ है ही नहीं जगत् में, सिर्फ अपने समझने में भूल हुई है। दखल क्यों होती है? और अगर होती है तो हिसाब हैं सारे!

आपको बिलीफ में तो आ गया है न, कि दादा का ज्ञान साइन्टिफिक है, अक्रम विज्ञान है यह तो! ज्ञान साइन्टिफिक होना चाहिए। यह तो, कोई भी व्यक्ति, कितना भी पढ़ा-लिखा हो, बड़ा साइन्टिस्ट हो या कोई और हो, फिर भी उन सभी को एक्सेप्ट (स्वीकार) होना ही चाहिए। और यदि नहीं करें तो हम समझेंगे कि उसमें कोई बेपरवाही है, कोई बेपरवाह है इसमें। साइन्टिस्ट भी कबूल करते हैं। विज्ञान यानी विज्ञान, स्पष्ट। उनकी बिलीफ में आना चाहिए। बिलीफ में आएगा तो हम समझेंगे कि आचरण में आएगा। इसलिए यह जगत् जैसा है वैसा एक्ज़ेक्ट व्यवस्थित ही है, जो चल रहा है वही करेक्ट है। लेकिन करेक्टनेस में अभी तो बुद्धि बहुत ही उछल-कूद करती है न, तब तक व्यवस्थित को समझने नहीं देगी।

व्यवस्थित बुद्धि से नहीं, दर्शन से समझ में आएगा

प्रश्नकर्ता : सौ प्रतिशत व्यवस्थित में आ जाएँगे तब यह कर्तापन जाएगा।

दादाश्री : व्यवस्थित सौ प्रतिशत समझ में आ जाएगा, व्यवस्थित की समझ स्पष्ट हो जाएगी, व्यवस्थित एक्ज़ेक्ट समझ में आ जाएगा तब तो केवलज्ञान हो जाएगा। तब तक जितना समझ में आएगा उतना केवलज्ञान खुलता जाएगा धीरे-धीरे। व्यवस्थित, बुद्धि से समझ में आ जाए ऐसा नहीं है, दर्शन से समझ में आ जाए, ऐसा है।

इस जगत् में कुछ भी नहीं आता हो और व्यवस्थित है ऐसा समझ में आ जाए उसे केवलज्ञान हो गया है, ऐसा कहा जाएगा। यह व्यवस्थित व्यवस्थित ही है लेकिन व्यवस्थित समझ में आना चाहिए, अनुभव में आना चाहिए। और यह व्यवस्थित समझ में आ जाए न, फिर कुछ समझने जैसा रहता ही नहीं। व्यवस्थित पूरी तरह से समझ जाए वह संपूर्ण ज्ञाता-द्रष्टा रह सकता है।

प्रश्नकर्ता : 'व्यवस्थित अच्छी तरह से समझ में आ जाए तो केवलज्ञान है' यह ज़रा ज़्यादा समझाइए न।

दादाश्री : व्यवस्थित में यह जितना समझ में आता है न, उतने केवलज्ञान के अंश खुल जाते हैं और फिर उस तरफ देखना ही नहीं होता। जितना समझ में आ जाता है उस साइड में देखना ही नहीं रहता। जिस ज्ञान में कुछ भी देखना नहीं रहता, उसे केवलज्ञान कहते हैं। यानी जब (देखना) खत्म हो जाता है न, तब दूसरी तरफ केवलज्ञान कम्प्लीट हो चुका होता है।

यह व्यवस्थित इस हद तक समझते जाना है कि अंतिम व्यवस्थित, केवलज्ञान प्रकट करेगा! यह व्यवस्थित मेरी इतनी सुंदर खोज है, यह अद्भुत खोज है। यह व्यवस्थित तो समझ में आ गया न, पूरी तरह से?

प्रश्नकर्ता : पूरी तरह से तो कैसे कह सकते हैं?

दादाश्री : जैसे-जैसे व्यवस्थित के पर्याय समझ में आते जाएँगे, जितने अधिक पर्याय समझ में आएँगे उतना अधिक लाभ होगा। यह व्यवस्थित सभी को समझ में आता ज़रूर है, हर एक को अपने-अपने पर्याय के अनुसार। फिर जब संपूर्ण पर्याय समझ में आ जाएँगे तो उस दिन केवलज्ञान हो चुका होगा। मुझ में भी चार डिग्री के पर्यायों की कमी है। यानी व्यवस्थित तो समझने जैसी चीज़ है।

जितनी रोंग मान्यताएँ जाएँगी उतनी जागृति बढ़ेगी और उतना ही 'व्यवस्थित' समझ में आएगा उसे! रोंग मान्यताएँ जाती हैं वैसे-वैसे व्यवस्थित समझ में आता जाता है और इस तरह फिर जागृति बढ़ती जाती है और संपूर्ण व्यवस्थित समझ में आ जाएगा तब पूर्णाहुति! लेकिन व्यवस्थित एकदम से समझ में नहीं आ पाता।

खुद का काम जाना ही नहीं कभी

आप इसके कर्ता नहीं हो, मान्यता में भूल है। जो काम आपका नहीं है, उसे कहते हो, 'मैंने किया' और आपका काम तो आप जानते नहीं हो। यानी आपके कितने काम हो गए? एक भी काम नहीं हुआ। आप अजागृतिपूर्वक आए थे, यहाँ जन्म लिया वह भी अजागृतिपूर्वक और गए तब भी अजागृतिपूर्वक। कुछ किए बगैर इतने अधिक पाप की गठरियाँ बाँध ली?

सिर्फ मनुष्य ही ऐसा है कि जिसे 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा *भान* रहता है और जहाँ कर्ता हुआ वहाँ आश्रितता टूट जाती है। उसे भगवान कहते हैं, 'भाई, तू कर लेता है तो तू अलग और मैं अलग।' फिर भगवान का और आपका क्या लेना-देना? कर्ता खुद है ही नहीं। 'व्यवस्थित' कर्ता है। यह ज्ञान हमने निरावृत किया है इसीलिए 'लिफ्ट मार्ग' कहते हैं! 'शुद्धात्मा' वह कोई परमात्मा नहीं है। 'शुद्धात्मा' तो परमात्मा के यार्ड में रहा हुआ स्थान है! 'आपको' (महात्माओं को) शुद्धात्मपद क्यों दिया गया है? 'आप' 'शुद्धात्मा' हो और 'चंदूलाल' जो कुछ भी करते हैं, उसके 'आप' 'रिस्पॉन्सिबल' (जिम्मेदार) नहीं हो, ऐसा विश्वास हो जाता है। अच्छा करते हो उसका भी दाग़ नहीं लगता और गलत करते हो उसका भी दाग़ नहीं लगता, 'कर्तापद ही मेरा नहीं है', उसे शुद्धात्मा का *लक्ष* बैठ गया कहलाता है। कर्ताभाव छूटने पर ही शुद्धात्मा का *लक्ष* (जागृति) बैठता है। 'मैंने किया' कहना वह निमित्त है, निमित्त भाव है और करवा रहा है वह उदयकर्म करवा रहा है। मेरे इन दोनों ही वाक्यों को जागृति में रखकर पूरी ज़िंदगी बिता दे, तो वह मोक्ष के नज़दीक आ

जाएगा! इतनी ही जागृति रखें, इन वाक्यों को 'ज्यों के त्यों' रहने दें, वह संपूर्ण 'अलर्ट' हो जाए तो आत्मा ही हो जाएगा! 'शुद्धात्मा' होने का यही सही साधन है! जिसका यह गर्वरस चला गया, वह छूटा। यह गर्वरस अनंत जन्मों से क्यों चख रहा है? क्योंकि आत्मरस कभी चखा ही नहीं।

अकर्तापद, वहाँ संपूर्ण जागृति

प्रश्नकर्ता : आत्मा को जान लिया, ऐसा कब कहलाएगा? कर्तापन छूट जाए तब?

दादाश्री : 'मैं यह कर रहा हूँ' वह भान टूट जाए तब आत्मा जान लिया कहलाएगा। पूरा दिन भूलें दिखाता रहे, वह आत्मानुभव। 'मैं यह संसार चलाता हूँ' वह भान नहीं है आपको?

प्रश्नकर्ता : वह तो अपने आप चलता है!

दादाश्री : वह तो जब अच्छा होता है, कोई तारीफ करे कि 'अरे, इन्होंने यह कितना अच्छा किया!' तब कहता है, 'मैंने किया था।' और गलत हो जाए तब कहेगा, 'यह मेरे कर्मों के उदय ने घेर लिया है।' पूरा जगत् ऐसे बोलता है। कर्तापद किसी काल में छूटता नहीं। सब छूटता है पर कर्तापद नहीं छूटता। कर्तापद का भान नहीं टूटे, तब तक अहंकारी कहलाता है और अहंकार अर्थात् भ्रांति। संपूर्ण भ्रांति वाले को 'वहाँ' प्रवेश नहीं करने देते। कर्तापद का भान टूट जाना चाहिए या नहीं टूट जाना चाहिए? शुद्धात्मा बोलते ज़रूर हैं, पर उससे कुछ होता नहीं है। वह तो कर्तापद का भान टूटे और 'कर्ता कौन है', वह समझ में आए फिर काम आगे चलेगा, नहीं तो कैसे चलेगा? जब तक कर्तापद है, तब तक अध्यात्म की जागृति ही नहीं मानी जाती। कर्तापद छूटे बिना कोई बाप भी मोक्ष के दरवाज़े में पैठने दे, ऐसा नहीं है!

'मैं चंदूलाल हूँ' वह भ्रांति टूट जानी चाहिए और कर्तापद छूट जाना चाहिए। फिर नाटकीय कर्तापद रहता है। 'ड्रामेटिक' कर्तापद यानी क्या? 'मैंने किया', ऐसे कहता है। जैसे भर्तृहरि राजा नाटक में बोलता है कि 'मैं राजा हूँ।' पर साथ ही, 'मैं लक्ष्मीचंद हूँ और घर जाकर खिचड़ी खानी है' वह भूल नहीं जाता। उसी तरह आप, 'मैं शुद्धात्मा हूँ' वह भूल नहीं जाते। और 'यह मैंने किया' ऐसा बोलते हो, वह 'ड्रामेटिक' कहलाता है। कर्तापद का भान टूट जाना चाहिए। नहीं तो लोग शुद्धात्मा तो गाते ही रहते हैं न? शास्त्रों में तो स्पष्ट लिखा ही है, उस तरह से वह शास्त्र गाता रहता है, पर उससे उसके दिन बदलें ऐसा नहीं है। वैसा तो अनंत जन्मों से गाया है।

'विज्ञान' ही छुड़वाए गर्वरस

यानी हम लोग वास्तव में कर्ता नहीं है। कर्ता दूसरी ही चीज़ है। यह हम आरोप करते हैं, आरोपित भाव करते हैं कि 'मैं कर रहा हूँ यह।' उसका गर्वरस चखने को मिलता है। ऐसा गर्वरस तो बहुत मीठा लगता है।

अब जैसा है वैसा जान ले कि भाई, यह कर्ता हम नहीं हैं और यह तो 'व्यवस्थित' कर रहा है, तभी से हम मुक्त हो जाते हैं। ऐसा विज्ञान होना चाहिए अपने पास। फिर राग-द्वेष होंगे ही नहीं न! यह 'वीतराग विज्ञान' किसी की समझ में आए ऐसा नहीं है। 'मुझ में' भी यह प्रकट हुआ उसमें मेरा कोई पुरुषार्थ नहीं है। यह तो 'बट नैचुरल' हुआ है। यह वीतराग विज्ञान हैं! चौबीस तीर्थंकरों का विज्ञान है और वीतराग विज्ञान के बिना मनुष्य (इस) बात को प्राप्त कैसे करेगा?

प्रश्नकर्ता : आपकी 'थ्योरी' के अनुसार तो 'व्यवस्थित' चला रहा है, फिर भी गर्वरस होता ही रहता है न, उसमें?

दादाश्री : नहीं। गर्व होगा ही नहीं न! गर्व

तो, 'मैं चंदूभाई हूँ' ऐसा 'डिसाइड' होने तक ही है। जब तक 'रोंग बिलीफ' है, तब तक गर्व है और 'रोंग बिलीफ' गई तो गर्व रहता ही नहीं।

प्रश्नकर्ता : 'रोंग बिलीफ' तो जाती नहीं है न, जल्दी?

दादाश्री : 'रोंग बिलीफ' चली ही जाती है न! हम वह निकाल देते हैं। कितने ही लोगों की 'रोंग बिलीफ' चली गई है न! और वह 'रोंग बिलीफ' एक नहीं है। मैं इसका भाई हूँ, इसका मामा हूँ, इसका चाचा हूँ, ऐसी कितनी ही सारी 'रोंग बिलीफें' बैठी हैं!

प्रश्नकर्ता : जब तक आप स्वरूप का भान नहीं करवाते, तब तक 'रोंग बिलीफ' जाती नहीं है न?

दादाश्री : नहीं जाती। उसका भान होना चाहिए। 'मैं चंदूभाई नहीं हूँ, चंदूभाई तो सिर्फ ड्रामेटिक है' ऐसा भान होना चाहिए! इसलिए फिर गर्वरस नहीं चखता।

गर्वरस चखना बंद किया तब मार्क बढ़ेंगे

अंदर मशीनरी को ढीली नहीं छोड़ना है। हमें उस पर ध्यान रखना है, खुद का जो कार्य है, वह करना। यह तो सिर पर आ पड़ी, भरी हुई प्रकृति है, छुटकारा ही नहीं हैं। ढूँढ निकालेगी कुछ उल्टा, वहाँ पर जा आएगी। जिसमें स्वाद आए, उसमें मिठास आती है। और फिर यह मिठास प्राकृतिक मिठास है, आत्मा की मिठास नहीं है। अभी तो बहुत कुछ करना बाकी है।

प्रश्नकर्ता : उसके बारे में ज़रा विस्तार से समझाइए।

दादाश्री : आप सभी ये पाँच आज्ञा ही पालो न, उसी में गहरे उतरो। अभी तक पाँच आज्ञा का ही पूरी तरह से पालन नहीं करते न! अभी तो मीठा लगता है न? जितना मीठा लगता है, उतना ही ज्ञान पर आवरण आता है। ये डिस्चार्ज के रस (रुचि) टूटेंगे। जैसे-जैसे टूटेंगे वैसे-वैसे वह ज्ञान प्रकट होता जाएगा।

भगवान के वहाँ अन्य कोई गुनाह नहीं देखा जाता। उनके लिए तो, 'आप' 'जहाँ हो और जैसे हो' वैसे नहीं बरतते, वही गुनाह है! 'आप' 'खुद' ज्ञाता-द्रष्टा पद में हो, आप उसमें रहो! ज्ञाता-द्रष्टा तो शुद्धात्मा ही है। उसके अलावा अन्य कोई ज्ञाता-द्रष्टा है ही नहीं। इसमें भी सब कुछ देखता है। ये सारी चीज़ें, जो आँखों से दिखाई देती हैं, वे सारी शुद्धात्मा की वजह से दिखाई देती हैं। वर्ना, बावा में तो ऐसा कुछ है ही नहीं, शक्ति ही नहीं है न! बावा तो अंधा है (ऐसा समझना है कि बावा मात्र मानता है कि मैं देखता हूँ और जानता हूँ। अतः इस प्रकार से वह देखने व जानने वाला बनता है। वास्तव में तो मूल आत्मा ही देखने व जानने वाला है और कर्ता साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल एविडेन्स है और मंगलदास साइन्टिफिक सरकमस्टेन्शियल के आधार पर करता है। तब बावा मानता है कि मैं कर रहा हूँ। इस प्रकार बावा कर्ता और ज्ञाता दोनों ही बनता है, मान्यता के आधार पर।)

तो फिर वह मान्यता ठीक से फिट हो गई है न? आप बावा से अलग, प्योर हो और हंड्रेड परसेन्ट प्योर स्वरूप, भगवान! अब आज्ञा में रहने से वे परसेन्ट बढ़ते जाएँगे धीरे-धीरे। और अगर गर्वरस चखना बंद हो गया तो बढ़ेंगे। अगर गर्वरस चखते हैं तो मार्क्स नहीं बढ़ते। वहीं के वहीं रह जाता है, बल्कि मार खा जाता है क्योंकि न खाने की चीज़ खा ली। उल्टी करने की चीज़ थी उसे खा गए!

जय सच्चिदानंद

आत्मज्ञानी पूज्य दीपकभाई के सानिध्य में सत्संग कार्यक्रम

वडोदरा

28-29 नवम्बर (शुक्र-शनि) शाम 7-30 से 10-30 - **सत्संग** और **30 नवम्बर** (रवि) शाम 5-30 से 9 - **ज्ञानविधि**
स्थल : जय अंबे क्रिकेट ग्राउन्ड, वाघोडिया रोड, वडोदरा. **संपर्क :** 9090515149

अहमदाबाद

12-13 दिसम्बर (शुक्र-शनि) रात 8 से 11 - **सत्संग** और **14 दिसम्बर** (रवि) शाम 5-30 से 9 - **ज्ञानविधि**
15 दिसम्बर (सोम) रात 8 से 11 - **आप्तपुत्र सत्संग**
स्थल : म्युनिसिपल कोर्पोरेशन ग्राउन्ड, डी मार्ट के सामने, निकोल, अहमदाबाद. **संपर्क :** 9824688399

अडालज

20 से 27 दिसम्बर - आप्तवाणी 14 भाग-4 पर सत्संग पारायण
समय : सुबह 10 से 12-30 और शाम 4-30 से 7
नोट : गुजराती किताब के पेज नंबर 304 से वाचन होगा। (हिन्दी-अंग्रेजी में ट्रान्सलेशन उपलब्ध रहेगा।)
सूचना : रजिस्ट्रेशन करवाना आवश्यक है, रजिस्ट्रेशन की अधिक जानकारी Akonnect ऐप के द्वारा दी जाएगी।
28 दिसम्बर - श्री सीमंधर स्वामी की प्रतिमाओं की प्राणप्रतिष्ठा
2 जनवरी - परम पूज्य दादाश्री की पुण्यतिथि पर विशेष कार्यक्रम
3 जनवरी (शनि) शाम 5 से 7 - **सत्संग** और **4 जनवरी** (रवि) शाम 4 से 7-30 - **ज्ञानविधि**

इंदौर

9-10 जनवरी (शुक्र-शनि) शाम 5 से 8 - **सत्संग** और **11 जनवरी** (रवि) शाम 4-30 से 8 - **ज्ञानविधि**
स्थल : बास्केटबॉल स्टेडियम, रेसकोर्स रोड, न्यू पलासिया, इंदौर. **संपर्क :** 9644544455

पूज्य नीरूमाँ / पूज्य दीपकभाई को देखिए भारत में टी.वी. चैनल पर...

- **'साधना'** पर हर रोज़ सुबह 7-50 से 8-15 (हिन्दी में)
- **'दूरदर्शन उत्तरप्रदेश'** पर हर रोज़ सुबह 7-30 से 8 और दोपहर 3 से 4 (हिन्दी में)
- **'दूरदर्शन सह्याद्रि'** पर हर रोज़ सुबह 7 से 7-45 (मराठी में)
- **'आस्था कन्नड़ा'** पर हर रोज़ दोपहर 12 से 12-30 तथा शाम 4-30 से 5 (कन्नड़ा में)
- **'दूरदर्शन चंदना'** पर हर रोज़ शाम 7 से 7-30 (कन्नड़ा में)
- **'दूरदर्शन गिरनार'** पर रोज़ सुबह 7-30 से 8-30, रात 9-30 से 10-30 (गुजराती में)
- **'वालम'** पर हर रोज़ शाम 6 से 7 (सिर्फ गुजरात राज्य में) (गुजराती में)

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687, **भावनगर :** 9313882288, **अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** 9574001445, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820
यु.एस.ए.-केनेडा: +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

अडालज : नवरात्र महोत्सव : 22 सितम्बर से 1 अक्तूबर 2025

छत्रपति संभाजीनगर : अविवाहित भाईओं की शिविर : 1 से 5 अक्तूबर 2025

छत्रपति संभाजीनगर : अविवाहित बहनों की शिविर : 7 से 11 अक्तूबर 2025

नवम्बर 2025
वर्ष-21 अंक-1
अखंड क्रमांक - 241

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Licensed to Post Without Pre-payment
No. PMG/NG/036/2024-2026
Valid up to 31-12-2026
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

विश्व पज़ल का एकमेव सॉल्यूशन

द वर्ल्ड इज़ द पज़ल इटसेल्फ। देर आर टू व्यू पोइन्ट्स टू सोल्व दिस पज़ल; वन रिलेटिव व्यू पोइन्ट एन्ड वन रियल व्यू पोइन्ट। बाइ रिलेटिव व्यू पोइन्ट यू आर चंदूलाल एन्ड बाइ रियल व्यू पोइन्ट आप 'शुद्धात्मा' हो। इन दो व्यू पोइन्ट्स से जगत् को देखोगे तो सारे ही पज़ल सोल्व हो जाएँगे। ये ही दिव्यचक्षु हैं। लेकिन जब तक 'ज्ञानी पुरुष' आपके अनंत काल के पापों को भस्मीभूत नहीं कर दें, आपको स्वरूप का भान न करवा दें, तब तक कुछ भी नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष प्रकट पुरुष के बिना काम नहीं निकलेगा।

\- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner.
Printed at Amba Multiprint, Opp. H B Kapadiya New High School, Chhatral - Pratappura Road,
At - Chhatral, Tal : Kalol, Dist. Gandhinagar – 382729.